प्रथम अध्याय

स्त्री-विमर्श का अर्थ, परिभाषा, क्षेत्र तथा महत्व

(1) स्त्री-विमर्श का अर्थ, परिभाषा, क्षेत्र तथा महत्त्व

(2) स्त्री-विमर्श का इतिहास तथा विकास

(3) स्त्री-विमर्श, स्त्री चेतना, स्त्री संवेदना, पदों की व्याख्या

(4) सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, तथा भौगोलिक संदर्भ में स्त्री-विमर्श का स्वरूप

स्त्री-विमर्श का अर्थ :-

आधुनिक संदर्भ में स्त्री- विमर्श एक बड़ा चिंतन है जिसके केंद्र में स्त्री-पुरुष दोनों हैं, केवल अकेले स्त्री ही नहीं। तब यह भी माना जाता है कि कोई भी पुरुष स्त्रीवादी हो सकता है और कोई भी स्त्री-पुरुषवादी हो सकती है। मुख्यतः यह विमर्श स्त्री मुक्ति के लिए शुरू हुआ। स्त्री विमर्श का अर्थ है- स्त्रियों के अधिकारों के लिए बहस या विचार। स्त्री के संबंध में होने वाला चिंतन मनन तो बहुत पहले से साहित्य और समाज में मिलता है। आदिकाल से स्त्री किसी न किसी माध्यम से समाज में चर्चा के केंद्र में रही है। समाज और संस्कृति में स्त्री से संबंधित कहानियां, कथाएं और मनगढ़ंत बातें सामने आती हैं। संसार में मनुष्यों ने स्त्री को अलग अलग ग्रंथों में अलग अलग दृष्टि से स्थापित करने का प्रयास किया। भारतीय जनमानस के अनुसार पुरुष और स्त्री का सहयोग जीवन के लिए जरूरी है। इस संदर्भ में लेखिका मृणाल पाण्डे कहती हैं कि- "समाज में स्त्रीत्वमूल की अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दायरे में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में अपूर्ण सापेक्ष जीवन के रूप में देखा गया है।"[1]

मुख्यतः हिंदी में प्रसिद्ध नारीवाद या स्त्रीवाद शब्द का समानार्थी अंग्रेजी शब्द फ़ेमिनिज्म (Feminism) है। यह फ्रेंच भाषा से लिया गया शब्द है जो 19वीं शताब्दी के दौर में प्रचलित था। यह शब्द विशेषतः चिकित्साशास्त्र में प्रयुक्त होता था। कुछ समय बाद यह शब्द अमेरिका में बीसवीं शताब्दी के दौर में सामान्य महिलाओं के समूह के अर्थ में प्रयोग

होने लगा। यह मातृत्व जीवन एवं उनकी अस्मिता (वजूद) को लेकर जुड़ गया। स्त्रियों का वह समूह स्त्री जीवन के मनोभावों एवं दशा और दिशा को लेकर आगे चल रहा था। समाज में स्त्री की लिंग समानता को लेकर दोमुहांपन का भाव व्यक्त हुआ। सामाजिक न्याय से बेदखल स्त्रियों के लिए स्त्री-विमर्श कारगर सिद्ध हुआ। नारीवाद आज के दौर में एक चिंतन है जो स्त्रियों के अस्तित्व की बात करता है। अतः नारीवाद शब्द के प्रचलन के पहले तमाम साहित्यकार, कलाकार, दार्शनिक तथा समाज सुधारकों ने इस विषय पर चिंतन शुरू किया। कुछ समय बाद यह चिंतन एक सशक्त विमर्श के रूप में उभरा जो स्त्रियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों की बात करता है।

यह बात सर्वमान्य है कि वैदिक काल में स्त्रियां अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग थी किन्तु उन पर इसी समाज के द्वारा जुल्म भी होते थे। हां इतना जरूर है कि आज जुल्म करने का तरीका बदल गया है। इन्हीं अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए स्त्रियों ने अपना मार्ग स्वयं चुना और इसका अंकन भी आज साहित्य में हो रहा है। साहित्य में सब जगह स्त्री अत्याचार, स्त्री उत्पीड़न, बलात्कार घरेलू हिंसा, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक दबाव, मानसिक उत्पीड़न का अंकन मिलता है। नित्य यह कहा जाने वाला वाक्य कि तू तो लड़की है या औरत है तुम यह कार्य नहीं कर सकती। इस प्रकार दिए जाने वाले मानसिक दबाव से तंग आकर स्त्री दो रास्तों को चुनने के लिए मजबूर हुई। एक यह कि इसी दुनिया में रहकर सब कुछ सहना भी है और दूसरा 'अब नहीं बस बहुत हो चुका'। यह दो कारण स्त्री-

विमर्श के केंद्र में हैं। 1789 में जब फ्रांसीसी क्रांति शुरू हुई उस समय स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व की मांग की गई। स्त्री चिंतन की यह मांग विचारधारा बन गई। 18वीं शताब्दी के अंतिम दौर में पश्चिमी सभ्यता में स्त्री के अधिकारों को सूचित करने वाला शब्द फ़ेमिनिज्म प्रसिद्ध हुआ। 1872 में फ्रांस तथा नीदरलैंड आदि देशों में इस शब्द का प्रयोग हो रहा था।

सबसे पहले स्त्री- विमर्श पर बात करें तो 'स्त्री' और 'विमर्श' दो शब्द हैं। पहला शब्द स्त्री है - ऋग्वेद में 'मेना' शब्द नारी के अर्थ में प्रयोग हुआ है। यास्क के अनुसार 'मानयन्ति एनाः पुरुषा' (निरुक्त 3/21/ 2) पुरुष इनका सम्मान करते हैं इसलिए स्त्रियों को मेना कहा गया है। ऋग्वेद में ग्ना शब्द भी स्त्री के अर्थ में आया है। ऋग्वेद में यह शब्द अधिकतर 'देव स्त्रियों' के लिए ही प्रयोग हुआ है। निरुक्त में इसका अर्थ यास्क ने बताया है कि ग्ना गच्छन्ति एनाः (निरुक्त 3/21/2) अर्थात स्त्री को ग्ना इसलिए कहा गया है कि पुरुष संसर्ग की कामना से स्त्री के पास आते हैं लेकिन संस्कृत पदबंध में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। संस्कृत में गम्याः इसी ग्ना शब्द से बना है। यह गम् धातु के योग में है।

स्त्री एवं पुरुष सृष्टि की रचना है। लिंग के स्तर पर भले ही स्त्री एवं पुरुष भिन्न हैं पर मानवीय स्तर पर दोनों समान है। यही कारण है कि आज समानता के स्तर पर बातें की जाती हैं। शोध के आधार पर यह मिलता है कि ऋग्वेद में नारी शब्द का उल्लेख नहीं है लेकिन नक्षत्र के

कार्यों के लिए नार्यः शब्द की उपमा दी गई है। नारी शब्द नृ या नर से बना है। यास्क ने नृत्य (नाचना) से इसका अर्थ माना है। निरुक्त में उद्धृत है कि नराः मनुष्या नृत्यति कर्मसु (निरुक्त 5/1/3)। ऋग्वेद में यह नृ शब्द का मतलब वीरता, दान देना और नेतृत्व करने के संदर्भ में है। नर शब्द के लिए भी यही अर्थ प्रयुक्त हुआ है। जब शब्दों की व्याख्या के स्तर पर दोनों समान हैं तथा राजनीतिक, सामाजिक सभी संदर्भों में स्त्रियों की बराबर की भागीदारी है तो फिर यह विमर्श क्यों? यह भी एक ऐसा सवाल है जो संपूर्ण मानव समाज एवं विश्व के साहित्य को चिंतन की धारा में समेट लेता है।

बड़े-बड़े समीक्षक जब इस पर विचार करते हैं तो इस पर चिंता नहीं करते बल्कि बहसबाजी या बयानबाजी करते हैं। यहां तक कि उनका एक कुनबा तैयार हो जाता है। समीक्षक न सिर्फ दो अलग-अलग मानसिक खाचों में विभाजित होते हैं बल्कि दो अलग-अलग कालखण्डों में बट जाते हैं। जीवन की कठिनाइयों को भोगने वाली स्त्री की प्रताड़ना, हिंसा तथा उलाहना को यह समीक्षक क्या व्याख्या करेंगे? यह स्त्री- विमर्श की अवधारणा को पुस्तकों तक सीमित रखते हैं। हमारे समाज में दोमुंहापन को झेलती हुई स्त्री अपने स्वर को धीमी गति नहीं देना चाहती। जब स्त्री आवाज उठाने की कोशिश करती है तो लांछन लगाकर दवा दी जाती है। संपूर्ण मर्यादा, सभी बंधन स्त्रियों के ऊपर थोप दिए गए हैं ,पुरुष भले ही कुछ गलत तरीके अपनाए सब छूट है फिर तो यह वही बात हुई कि 'समरथ को नहिं दोष गुसाईं'। कितनी भी पढ़ी-लिखी औरत हो उसे परंपरा और मर्यादा को खंडित

करने का अधिकार नहीं है। यह सभी पहलू स्त्री को वेद ,उपनिषद तथा कई धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से पहले ही गिनाए जा चुके हैं।

आज स्त्रियां देख ही नहीं रही बल्कि लिख भी रही हैं वह भी क्या? पुरुषों के विचार, मर्दवादी सोच, सामाजिक दांव-पेच। किस तरह गांधी और मनुवादी समाज में स्त्रियां आज भी सामाजिक कुरीतियों का सामना कर रही हैं। स्त्रियों की भाषा गद्य हो या पद्य एक खास उलटबांसी में कबीर को भी पीछे छोड़ते हुए साहित्य और समाज के दोनों स्तरों पर बात करते हुए तेजी ग्रोवर कहती हैं कि-

"बात यह नहीं कि कहीं मन नहीं लगता
कहीं भी जड़ महसूस नहीं होती,
कहीं भी अकेलापन साथ नहीं छोड़ता। बात ठीक इससे उलट है
हर जगह मन लगता है, हर जगह जड़ महसूस होती है
आत्मीयता से भरे हुए नक्षत्र पर किससे कहूं कि-
ऐसा है..... कौन मेरी बात का विश्वास करेगा?"[2] (तेजी ग्रोवर)

स्त्री के लिए कई उपमाएं दी गई जैसे- स्त्री, नारी, अबला, दारा, प्रमदा, रमणी कुलक्षणी, लक्ष्मी राक्षसिन, चुड़ैल, डायन बाजारू आदि। फिर भी इन सभी दंशों को झेलते हुए स्त्री मानव समाज में अपने वजूद को पाने के लिए कवायद कर रही है। देश में अनेक योजनाएं लागू होती हैं, महिला विकास मंत्रालय का गठन किया जाता है परंतु स्त्रियों की समस्याओं पर कितना अमल होता है यह सबको मालूम है? अगर कहा जाए तो यह सब स्त्रियों के

लिए छलावा है, ऐसी प्रशंसा सुनना स्त्रियों को अच्छा नहीं लगता। संपूर्ण नियम- कानून कानून की किताबों तक सीमित हैं, यदि स्त्री नारी- मुक्ति के लिए न लड़े तो उसकी हिस्से में कुछ नहीं।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में लिखा है- "स्त्री पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। उनके अनुसार पति ही स्त्री का एकमात्र देवता है और पति की सेवा करना स्त्री का मुख्य कर्तव्य है। मृच्छकटिकम् नाटक में उद्धृत है कि स्त्री और संपत्ति पर विश्वास नहीं करना चाहिए यह दोनों सांप की तरह केचुलें बदलती हैं। बौद्ध जातक कथाओं में उल्लेख मिलता है कि उस जमाने में स्त्री को गिरवी तक रख दिया जाता था और उन्हें असभ्य और कृतज्ञ माना जाता था। (समुग्ग जातक 436)। बौद्ध कालीन साहित्य में स्त्री की उपमा नदी, मार्ग, शराबखाना, धर्मशाला, प्याऊ आदि से दी गई। मृदुपाणी जातक में इतना तक लिखा है कि स्त्रियां जिस पुरुष से समागम करती हैं उसे आग की तरह शीघ्र जला डालती हैं। (जो व्यक्ति स्त्रियों पर भरोसा करता है वह नराधम है)।"[3]

अतः नारीवाद एक कल्पना नहीं है बल्कि उपेक्षित, प्रताड़ित, घृणित स्त्रियों के प्रति किए गए व्यवहार के विषय में एक चिंतन है। युगों-युगों से उपेक्षित नारी के प्रति दया का भाव जगाने की आवश्यकता हुई। शक्ति तो स्त्री में थी ही पर उसे जागरूक करने की आवश्यकता थी। अतः चिंतन की विचारधारा विमर्श का प्रतिनिधित्व करने लगी। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में इसका अर्थ है- 19वीं शताब्दी के मध्य काल से लेकर यूरोप में विकसित

स्त्री अधिकारों का प्रस्ताव। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक ,सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को समान स्तर पर मान्यता। इन मान्यताओं को एक चिंतन के रूप में प्रस्तुत करने के लिए 'फेमिनिज्म' नाम दिया गया। एक सामान्य तौर पर नारीवाद घरेलू, पारिवारिक, कामकाजी समाज में होने वाले स्त्री शोषण का एक संकलन है। इस प्रकार फ़ेमिनिज्म शब्द का इस्तेमाल सर्वप्रथम 1895 ई. में 25 अप्रैल को 'अतेन्वम' नामक पत्रिका में मिलता है। जिसका मतलब है अपनी स्वतंत्रता की मांग करने वाली या स्वतंत्र जीवन की मांग।

स्त्री-विमर्श में 'विमर्श' शब्द का मतलब है- स्त्री के संदर्भ में गंभीर चिंतन। जब संपूर्ण आजादी अधिकार, सुख- सुविधा के दावे किए जा रहे थे तब यह विमर्श शुरू क्यों हुआ? ऐसे कई सवाल हैं जो स्त्री को केंद्र में रखने को विवश करते हैं। प्रकृति ने जब स्त्री- पुरुष को जन्म दिया तो समाज में आखिर विषमता क्यों मिली? सदियों से संताप सहती आ रही स्त्री जब भी अपनी मुक्ति की आकांक्षा के दरवाजे खटखटाई है तब-तब उसे निराशा मिली। तब उसके लिए स्त्री को स्वयं सशक्त होना पड़ा। संपूर्ण जिम्मेदारी अपने कंधों पर उठाना पड़ा, पुरुष पर निर्भर रहना छोड़ दिया और अपनी किस्मत ठोक कर स्वयं भाग्य को अनुकूल बनाने की चेष्टा करने लगी।

जब भी स्त्री- विमर्श पर चिंतन शुरू होता है तब-तब स्त्रीवादियों या जो स्त्रीवादी नहीं है सबके मस्तक की त्योंरियाँ चढ़ जाती हैं। फिर ऐसा लगता है कि अब कुछ नया होने वाला है। साहित्य लिखने वाले कुछ कवि, लेखक, समीक्षक भले ही लिख गये हो कि 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही

कहानी', 'मुक्त करो नारी को', 'आंसू से भीगे अंचल पर अब मन का ही सब कुछ रखना होगा' मगर यह आज के संदर्भ में या स्त्री- विमर्श के संदर्भ में कितना अनुकूल है यह देखने योग्य है? स्त्री जब सभाओं को संचालित करती थी, युद्ध में हुंकार भरती थी, शासन संचालन करती थी तब वह अगला कहां थी? जब स्त्री को मानसिक रूप से कमजोर किया गया, उसे हमेशा यह कहा जाने लगा कि तुम स्त्री हो यह नहीं कर सकती। जब समाज में स्त्री की अस्मिता खंडित हुई तथा उसके ऊपर मर्यादा का बोझ लाद दिया गया तब स्त्री अपनी समस्याओं को अपने साथ लेकर विमर्श (चिंतन) के रूप में समाज और साहित्य के क्षेत्र में उतर पड़ी। पितृसत्ता को खुली चुनौती देने का साहस स्त्री में था। जिसे अबला समझा जाता था उसी ने आज पितृसत्ता की कलगी खोलना शुरू कर दी। परंपरा, रीति-रिवाज, धार्मिक आडंबरओं के पीछे स्त्री को धकेल दिया गया था, वही स्त्री आज सभी सामाजिक दांव-पेच समझ चुकी है तथा उसे नकारने का साहस स्त्री में है। पुरुषोचित सत्ता भले ही इसका विरोध करें कि स्त्रियां अपनी राह आसान करने के लिए सब कुछ भूल गई, मगर स्त्री- विमर्श ऐसी विडंबनाओं, थोथी नैतिकता को अब केवल पहेली समझता है जिसे कोई भी बूझ सकता है? कुछ इस प्रकार का स्त्री चिंतन वर्जीनिया वूल्फ का है जो स्त्री- विमर्श के जानकारों के लिए सदैव प्रश्न खड़ा करता है जो इस प्रकार है- "औरतों के बारे में जानकारियां एकदम नगण्य है। औपचारिक इतिहास भी हर जगह पुरुष आनुवंशिक परंपरा की गाथा है मातृवंश ही नहीं। पिताओं के बारे में हम जानते हैं कि वह

सैनिक थे या जहाजी या अमुक ओहदे पर विराजते थे वगैरह, लेकिन हमारी माओं की, नानी-दादियों के बारे में उपलब्ध जानकारियां क्या है? बस यही कि उनके नाम क्या थे, उनकी शादियां कब किन खानदानों में, कौन से पुरुषों से हुई और उन्होंने कितने बच्चे पैदा किए।"[4]

स्त्री-विमर्श के चिंतन के लिए अब हमें पश्चिम का नारी विमर्श कम देखना चाहिए क्योंकि जो अधिकार, जीवन की आकांक्षा उनको (स्त्रियों) को वहां मिले या आंदोलन करके स्त्रियों ने अर्जित किया ।वह तो भारतीय परिवेश में इच्छा मृत्यु के बराबर था। शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि स्त्री- विमर्शकारों को स्त्री- मुक्ति के लिए कुछ नया रास्ता खोजना चाहिए। बंधी- बधाई परिपाटी को केवल आधार मानना चाहिए मुद्दे नहीं, मुद्दे हमेशा नवीन होने चाहिए। लफ्फाजी करके या विद्वान की दृष्टि से स्त्री चिंतन पर झूठे बयानबाजी नहीं करना चाहिए, बल्कि चिंतन की एक नयी दिशा पर जोर देना चाहिए जिससे स्त्रियां जिस वजूद को पाने के लिए भटक रही हैं वह उन्हे मिल सके। केवल अधिकार दे देने से सारी समस्याएं नहीं खत्म हो जाती, उनकी संवेदनाओं, निजी जिंदगी को बेबाकी से पढ़ना पड़ेगा।

भले ही स्त्रीवादी साहित्यकार या समाजवाद की आधारशिला रखने वाले लोग यह कहें कि स्त्रियों की शिक्षा, अधिकार और चेतना में बढ़ोतरी हो रही है। मगर यह हक स्त्री ने स्वयं ढूंढना शुरू किया। मर्दवाद की अवधारणा के खोखले नतीजे कहां तक सही हैं इसका उत्तर मृणाल पांडे दो टूक शब्दों में देती हैं कि-"पुरुषों को ढोल, गवार, शुद्र, पशु और नारी को

अनिर्बाध पीटने का हक देते आए समाज की परंपरा भले ही कितनी ही उत्कृष्ट और सच्ची क्यों न हो लेकिन अगर वह बदलते समय के तेवर नहीं पहचानेगा तो घाटे में रहेगा। आज भी यदि केवल लफ्फाजी के स्तर पर ही 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते' की माला जपते हुए समाज यदि घरों के भीतर स्त्रियों की बेगारी के बूते सिर्फ पुरुषों के लिए ही सुविधा के रेशमी घोसले बनाने में दिलचस्पी रखता रहा तो उसके द्वारा स्त्री को लाख सोने के रेशम से मढ़ दिया जाए फिर भी सुखमय परिवार की कामना अंततः एक मरीचिका ही प्रमाणित होगी।"[5] (कादंबिनी)

स्त्री-चिंतन को केवल एक सहज मनोवृति से न जोड़कर बल्कि अस्मिता चिंतन का नाम देना चाहिए। इस समाज में रहकर दोयमदर्जे का व्यवहार क्यों। स्त्रियों के प्रति गुटबाजी या साजिश का हलफनामा कब तक समाज में टिका रहेगा, एक न एक दिन काला चिट्ठा जरूर खुलेगा। नारीवाद की अवधारणा मानव जीवन के एक दर्शन को प्रकट करती है, जहां स्त्री-पुरुष का भेद नहीं बल्कि आधी आबादी कही जाने वाली स्त्री अपनी सपाटबयानी से स्त्री अस्मिता के झंझावात से समाज को झकझोर देती है। स्त्री की घुटन, मनोवैज्ञानिक सोच, मानवीय संबंधों को स्थापित करने की कला नारीवाद में है। जो स्त्री ढूढ़ना चाहती है अर्थात अपनी देह की मुक्ति (स्त्री के शरीर पर खुद का अधिकार) अस्मिता, मानव मूल्य तथा स्वतंत्रता जिस दिन मिल जाएंगे उस दिन स्त्री-विमर्श का मुद्दा जीवंत हो जाएगा हो उठेगा ।तब यह कहने की आवश्यकता नहीं होगी कि 'दुखवा मैं कासू कहूं मोर सजनी'।

नारीवादी लेखिका मृणाल पाण्डे का विचार है कि-"नारीवाद कत्तई स्त्रियों को वृहत्तर समाज से अलग-थलग रखकर देखने और हर क्षेत्र में पुरुषों के खिलाफ उन्हें प्रोत्साहित करने का दर्शन नहीं। यह तो एक समग्र दृष्टिकोण है जो संवेदनशील नागरिकों में पहले घोषित और प्रवंचित स्त्रियों की स्थिति के प्रति सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण विकसित करके उसके उजास में उन्हें अपने पूरे समाज के शोषित और प्रवंचित तबकों को समझने की क्षमता देता है। साथ ही उनके प्रति एक तरह की सदस्यता तथा कर्मठ दायित्व बोध भी जगाता है।"[6]

स्त्री- विमर्श का भाव वह काल्पनिक नहीं है बल्कि युगों- युगों से समाज की बेड़ियों में बांधी गई तथा अपने अधिकारों के प्रति अबूझ स्त्रियों की दास्तान है। स्त्री जीवन की विसंगतियां मजबूर करती हैं स्त्री को अपनी गाथा व्यक्त करने में। जो दर्द या दंश स्त्री ने झेला है उसकी कथा और संवेदना का एक पक्ष है स्त्री- विमर्श। स्त्री संवेदना, दर्द या लाचारी जो पालिटिक्सों के लिए राजनीतिक मुद्दा है मगर स्त्रियों के लिए या वोट बैंक की राजनीति नहीं, अपितु दलित, शोषित तथा आकांक्षाओं को बलिदान करने वाली स्त्रियों की करुण कथा है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरोधाभासी जीवन का एक अंश हैं स्त्रियां। जिन्हें अव तक घृणित समझा जाता था, दलित, शोषित के खाचों में लपेटकर कई शताब्दियों के लिए रख दिया गया था, पुराने विचारों को नकारने वाली, इसी समाज पर प्रश्नचिन्ह खड़ा करने वाली स्त्री अपने वजूद को पाने के लिए विमर्श के साथ सामने आयी। आज

इन्ही पारदर्शी भावबोधों का अवलोकन करने की आवश्यकता है ।उपभोक्तावाद की संस्कृति को नकारने वाली स्त्रियां मर्दवाद की हर अवधारणा को खारिज करती हैं। नारीवादी लेखिका मृणाल पांडे पुरुषों की अहमन्यता को नकारते हुए कहती हैं कि- "इस तरह नारीवादी शब्दावली की ओट में छोटे से संपन्न वर्ग की स्त्रियों की स्वतंत्रता और उपभोगवृत्ति को पूरे देश की स्त्रियों की स्थिति बताते हुए आर्थिक, सामाजिक, असमानताओं को जायज ठहराना और मुक्त बाजार व्यवस्था तथा स्व केंद्रित उपभोक्तावाद को सभी भारतीय स्त्रियों के लिए एक बेहतर विकल्प बताना यह एक हास्य झूठ के अलावा कुछ नहीं। यदि सच्चे नारीवाद को बनाए रखना है तो हमें हर क्षेत्र में निर्ममता से इस झूठ का पर्दाफाश करना ही होगा।"[7]

स्त्री-विमर्श स्त्री की अहमियत का दस्तावेज है जिसका इतिहास समाज की गहराइयों को अपने अंदर समेट लेता है। पुरुष की कामना के लिए अपना संपूर्ण जीवन न्योछावर करने वाली स्त्री मर्द के उत्पीड़न का शिकार क्यों है? सारे जुल्म स्त्रियों के लिए ही बने हैं क्या? स्त्रियां अपनी तेज -तर्रार विचारों की भावनाओं को गति देना चाहती हैं, मगर मर्दों की निगाह में जीवन अधिकार की भाषा तो अब केवल व्रत-त्योहार बनकर रह गई। स्त्रियों की अनुभूतियों के बारे में समग्र से चिंतन करने की आवश्यकता है। जब तक समाज में हर वर्ग की स्त्री अपने अधिकार के प्रति सजग नहीं हो जाती, पितृसत्ता के नियमों की चुनौती को खत्म नहीं कर देती तब तक

स्त्री- विमर्श स्त्री पक्ष की गहराइयों को नहीं व्यक्त कर सकता एवं तब तक इसके बारे में सफल बात करना कल्पनीय साबित होगा।

स्त्री-विमर्श की परिभाषा:- विभिन्न विद्वानों नारीवादियों एवं महिला लेखिकाओं ने स्त्री- विमर्श की विभिन्न परिभाषा दी है जो इस प्रकार है-

1) **नासिरा शर्मा के अनुसार-** "स्त्रीवादियों का यह अतिरेक मुझे उलझन में डालता है। पुरुष के खिलाफ खड़ी होने में ही स्त्री की मुक्ति देखी जाती है। ऐसी स्त्री की कल्पना क्यों नहीं की जाती जो न अपने खिलाफ हो, न परिवार के, न समाज के।"[8]
2) **रोहिणी अग्रवाल के अनुसार-** "स्त्री-विमर्श अस्मिता आंदोलन है। यह हाशिए पर धकेल दी गई अस्मिताओं को पुनः केंद्र में लाने और उनकी मानवीय गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का अभियान है। स्त्री- विमर्श अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था का विश्लेषण करता है। यह स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने वालों का विरोध करता है और स्त्री को एक जीवंत मानवीय इकाई समझने का संस्कार देता है।"[9]
3) **हर्षवर्धन त्रिपाठी का कहना है-** "नारियों के अधिकारों एवं उनका पुरुषों के साथ सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता का पक्षधर आंदोलन ही स्त्री- विमर्श है।"[10]

4) **मृणाल पांडे के अनुसार-** "स्त्री- विमर्श में नारी मुक्ति की समस्या को उठाया गया है। नारी शोषण की समस्या एकांगी नहीं है यह युगीन शोषणतंत्रों सामाजिक, राजनीतिक ढांचे, आर्थिक परिस्थितियों और उन सब की उपज सांस्कृतिक, धार्मिक मूल्यों और नैतिक अवधारणाओं का एक अंग है।"[11]

5) **सुमन राजे का कथन है कि-** "स्त्री द्वारा लिखा गया साहित्य तथा स्त्री के विषय में लिखा गया साहित्य साहित्यिक स्त्री- विमर्श है।"[12]

6) **मैत्रेयी पुष्पा का कथन है कि-** "नारीवादी स्त्री- विमर्श नारी की यथार्थ स्थिति के बारे में चर्चा करना ही स्त्री विमर्श है।"[13]

7) **डॉक्टर अमर ज्योति के अनुसार-** "नारी को पारंपरिक रूढ़ियों, मान्यताओं, अंधविश्वासों के शोषण से मुक्त कर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को समाज में प्रतिष्ठित करना ही स्त्री विमर्श है।"[14]

8) **सुधीश पचौरी का कथन है कि-** "दैहिक विमर्श में जाए बिना और देह को जगाए बिना स्त्री को न पढ़ा जा सकता है और न ही स्त्रीवाद को समझा जा सकता है।"[15]

9) **मृणाल पाण्डे का कथन है कि-** "स्त्री-विमर्श ने स्त्री की समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य से उठाया है। उसने समाज रचना के वर्ण तथा वर्ग की विसंगतियों, शोषकों, शासक व पुरुष की उद्याम भोग विलास, नारियों के संत्रास, अमानवीय शोषण और सभी वर्गों- वर्णों में नारी स्वाधीनता का बड़ा तीखा व मार्मिक चित्रण किया

है। जन्म पर आधारित विसमतामूलक वर्णाश्रम धर्म और वंश की वृद्धि पर जोर देने वाली अन्यायी, अत्याचारी, वरिष्ठ परंपरा में स्त्री सर्वथा स्वाधीन, पुण्य, वस्तु व दासी ही रही है। स्त्री-विमर्श स्त्री की इसी हकीकत का जीवंत दस्तावेज है।"[16]

10) **तस्लीमा नसरीन के अनुसार-** "जो पुरुष सड़े-गले पुराने पुरुषतांत्रिक समाज में कुछ भी बदलने नहीं देते। जो लोग मर्द-औरत की क्षमता में विश्वास नहीं करते, जो लोग पुरुष तंत्र रूपी सांप को दूध, केला खिलाकर पाल रहे हैं, जिन लोगों ने प्रतिज्ञा की है कि औरत को वह जिंदगी भर अपने पैरों तले कुचलते- पीसते रहेंगे। मैं चाहती हूं कि वह इंसान बने, वह तमाम औरतें भी इंसान बने जो पुरुष तंत्र को बनाए रखने के लिए सचेतन तरीके से हर किस्म की मदद कर रही हैं। मैं मानती हूं कि वह लोग लिंग आधारित वैषम्य को अस्वीकार कर दे, सच्चाई और क्षमता में प्रबल विश्वास करें। मानव मात्र के सच्चे अर्थों में विश्वासी हो, जीवन में मानव तंत्र की चर्चा हो तो मर्द औरत में कोई फर्क बचेगा ही नहीं।"[17]

स्त्री-विमर्श का क्षेत्र:- स्त्री-विमर्श का मूल्यांकन कई नजरिए से किया जा सकता है। स्त्री विमर्श का क्षेत्र बहुत व्यापक भी है। स्त्रियों का योगदान समाज और राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में विचारणीय है इसे नकारा नहीं जा सकता। स्त्रियों के जीवन का जुड़ाव समाज के हर क्षेत्र में है इसे इस प्रकार देखा जा सकता है-

(1) **स्त्रियों का पारिवारिक जीवन-** स्त्रियाँ भी परिवार का एक हिस्सा है। परिवार को संभालने एवं पारिवारिक जीवन को सुदृढ़ बनाने की जिम्मेदारी स्त्रियों के ऊपर थोप दी जाती है। स्त्री किसी भी परिस्थिति में रहे वह बीमार हो या किसी प्रकार से कोई कार्य करने में सक्षम न हो फिर भी पुरुषों द्वारा जलील किया जाता है। प्राचीन समय से ही पारिवारिक क्षेत्र की समस्याओं से स्त्रियों को गुजरना पड़ा है। पितृसत्ता के नियम- कानून केवल मर्दवादी विचारधारा के पक्ष में बने स्त्रियों के पक्ष में कुछ भी नहीं, फिर भी स्त्रियां संघर्ष करती रही। स्त्रियों के घरेलू जीवन की दास्तान को जानने के लिए इस क्षेत्र में स्त्रियों का हाल जानना आवश्यक है। पारिवारिक जीवन का सच्चा निरूपण जिसमें स्त्रियां पिसती रहीं 'सीमंतनी उपदेश' नामक पुस्तक में देखने को मिलता है। इससे अच्छा उदाहरण शायद ही कहीं मिले। सीमंतनी उपदेश मिलता है कि- "पहले तो खाबिद की मां, बहन ही चैन नहीं लेने देती। हर वक्त ताने दिया करती हैं। यह विवाहिता नहीं है धरेल है, ऐसी बहुत फिरा करती हैं। जिसने एक के करने से दूसरा किया उसका क्या इतवार है? फिर तमाम घर की खिदमत करें, तब रोटी खाने को मिलती है ।अगर खाबिद हुक्का पीता है तो तीन बजे उठकर हुक्का भरना होगा। चाहे कितनी ही सर्दी पड़ती हो मगर तुम्हें जरूर उठना है ।अगर लाला साहब कहीं नौकर हो तो 9:00 बजे खाना तैयार करना पड़ेगा। वह खाना खाकर दफ्तर जाएं या अपने और किसी काम को। यही हाल अपना है दो-चार

लड़के अपने, दो -चार पहले कोई रोता है, कोई रोटी मांगता है, कोई मैंले में लिसा रहता है।"[18]

यही भारतीय नारी का जीवन है। इस दमघोटू समाज में स्त्री कैसे जी रही है यह भी एक बड़ा सवाल है? जब स्त्रियों ने पारिवारिक स्तर की समस्याओं से निकलना शुरू किया तब उन्हें लगा कि वह भी स्वयं स्वावलंबी होकर सर्वत्र स्वतंत्र जीवन जी सकती हैं। यही कारण है कि आज स्त्रियां पाक कला में सिद्ध तो है ही साथ ही साथ पारिवारिक जीवन स्तर को अपने अनुकूल बना लिया है। कृषि से लेकर उद्योग -धंधों के क्षेत्र में अपना योगदान देकर पितृसत्तात्मक समाज को आश्चर्यचकित कर दिया है।

स्त्रियां घर में ही रहकर बीड़ी बनाना, चटाई बनाना, छोटे-छोटे घरेलू सामान बनाना, ऊनी कपड़े बुनना आदि कार्यों में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन कार्यों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को पैसे भी कम मिलते हैं और जो मिलता भी है उस पर पहला हक परिवार का माना जाता है। हमारे भारतीय समाज में यह जो पारिवारिक ढांचा है जिसमें यह माना जाता है कि सभी सदस्य एक बराबर हैं, वह सब जो कुछ भी करते हैं और सोचते हैं सबके लिए सोचते हैं। उनका उद्देश्य केवल एकांकी जीवन जीना ही नहीं बल्कि परिवार को खुशहाल एवं मजबूती प्रदान करना होता है इसलिए यहां परिवार की कल्पना सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय भी है।

परिवार को चलाने में स्त्रियों की महत्वपूर्ण भूमिका है भले ही सत्ता पुरुष के हाथ में हो। भारतीय परिवारवाद की कल्पना आदर्शवादी होते हुए

भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बंधी है। इन सब बातों का अवलोकन करते हुए मृणाल पांडे दो टूक शब्दों में कहती हैं कि- " पुरुष, स्त्री तथा बच्चों को आसरा देने वाली परिवार संस्था मानवीय सभ्यता की एक ऐसी बुनियादी इकाई है जिसका कोई विकल्प नहीं पर, इस इकाई की भीतरी शक्ति समीकरण जो अंततः पूरे राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक परिदृश्य तैयार करते हैं, अपने यहां तमाम बदलावों के बावजूद सदियों से वे ही रहे आए हैं ।इससे अहित औरतों का भी हुआ है और पुरुषों के लिए कामयाबी का मॉडल रहा ताकत के चरम पूंजी भूत प्रतीक मर्द का, जबकि स्त्रियों के लिए निष्क्रिय सहचरी का स्वरूप उत्तम माना गया। क्या फिर इन दोनों के रिश्तो में प्यार की जगह बच सकती है? यह अपने ही यहां नहीं दुनियाभर में हुआ है।"[19]

घर परिवार में बच्चों के पालन- पोषण की जिम्मेवारी स्त्रियों की होती है। पुरुष बच्चों के पालन पोषण का कार्य घर की स्त्रियों पर छोड़ देते हैं। इस पारिवारिक संस्था के बोझ से स्त्री आज भी पिस रही है। परिवार से लेकर बाहर की दुनिया में हर जगह स्त्री शोषण का शिकार है। शोषित स्त्री अपनी मर्यादा को लेकर सामाजिक बंधन में फंसी है। जिस दिन वह इस बंधन से मुक्त हो जाएगी उस दिन स्त्री अपने अस्तित्व को पा लेगी।

परिवार में स्त्री आज भी घरेलू हिंसा का शिकार हो रही है। दहेज, हत्या, उत्पीड़न तथा साथ ही साथ मानसिक उत्पीड़न को स्त्री सहन कर रही है। अपने ही घर परिवार के लोगों से इस तरह के जुल्म सहन कर रही है। यहां मानवीय संबंध तार-तार हो रहे हैं। यही कारण है कि आज वैज्ञानिक युग

में तलाक अलगाव की स्थिति ज्यादा बढ़ रही है। सात जन्मों की कसम खाने वाला पारिवारिक बंधन का आदर्श कहां गायब होता जा रहा है? यह एक सवाल ही नहीं भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक चिंता की लकीर है। समाज में क्यों स्त्रियां ही शोषण का शिकार हो रही पुरुष क्यों नहीं? यदि इन सवालों की गहराई में कोई जाए तो वहां परिवारवाद की कल्पना ही खत्म हो जाएगी। स्त्री- विमर्श इन्हीं चुनिंदा सवालों की पड़ताल करता है।

पिछले कुछ दशकों से भले ही स्त्रियों के लिए कानून बने हो मगर स्त्रियों पर हो रही हिंसा को देखकर शासन और न्यायपालिका दोनों कटघरे में हैं। न्यायालयों में दहेज, हत्या, साजिश, बलात्कार की रिपोर्ट आज भी भारतीय न्यायपालिका में ज्यादा देखने और सुनने को मिलती हैं ।स्त्रियां जब स्वयं इस क्षेत्र में आगे आई तब उन्होंने नौकरीपेशा में अपने आप को तब्दील किया। जज से लेकर राजनेता तक का सफर तय करने की मुहिम शुरू किया तब स्त्रियों की स्थिति बेहतर हो सकी। आज स्त्रियां केवल इस क्षेत्र में उत्तर ही नहीं पड़ी हैं बल्कि एक सुधार भी हुआ है, जो स्त्रियों के लिए एक सुरक्षात्मक एक सुझाव रवैया भी है। बदलते परिवेश में घरेलू हिंसा कम होते जा रहे हैं क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहरी क्षेत्रों की स्त्रियां अपने अधिकारों को जानने, पहचानने लगी। मीडिया टीवी चैनलों, सोशल मीडिया के माध्यम से स्त्रियां स्त्री- हिंसा को रोकने का सुझाव भी प्राप्त कर रही हैं, और उसको लागू करने में अपना योगदान भी दे रही हैं।

21वी सदी का समाज जिसने समाज के सभी पैमाने में स्त्री हिंसा को खारिज किया है, उसी समाज की पोल खोलने का काम मृणाल पांडे ने अपनी रिपोर्ट में किया है। मृणाल पांडे का स्त्री विषयक लेख पहले से लेकर आज तक के समाज की भ्रांतियों की निंदा करता है। मृणाल पांडे का मानना है कि स्त्री के विरुद्ध हिंसा को लेकर अपने यहां पढ़े-लिखे मध्यम वर्ग में तीन तर्क- विमुख प्रतिक्रिया मिलती हैं-

1. वही पिटने लायक रही होगी यानी हिंसा की जिम्मेदारी हिंसा की शिकार की है।
2. अच्छा यह तो बड़ी खराब बात है। पर यह तो गरीब अनपढ़ों में होता है। यानी मौत की तरह यह व्याधि चराचर जगत में हमेशा आपको और आपके अपनों को छोड़कर ही सबको व्यापेगी ।
3. यह तो औरत का नसीब ही है। धीरज उसका आभूषण है। यानी कानूनी-गैरकानूनी दोषी-निर्दोषी वगैरह होने का सवाल ही नहीं। स्त्री होने का मतलब ही है कि वह हिंसा के लिए सतत प्रस्तुत रहे।

इन धारणाओं की मान्यता पर कटाक्ष करते हुए मृणाल पांडे का कहना है कि - “तनिक और गौर से देखें तो हम यही पाएंगे कि हमारे तमाम मिथक और व्याख्यान हमारे टीवी सीरियल, हमारी फिल्में और चलताउ साहित्य यह सब उसी धीरजवंती, लाजवंती, भागवंती स्त्री के गुण गाते हैं जो हिंसा की चुनौती से निपटने की बजाय घुट-घुट कर घुलती रहे या जिसने

जहर पीकर या आग में कूदकर प्राण दे दिए। यानी पहले वह दूसरे हिंसा की शिकार बनी फिर आत्म हिंसा में विसर्जित हो गयी। अगर चिकित्सा, शास्त्रीय प्रमाण होते तो शायद हम हिन्दुस्तानी तो यह भी मान लेते कि हमारे पुरुषों की अपेक्षा हमारी औरतों का दम अधिक हंसी खुशी और फुर्ती से निकलता है और मारपीट झेलने में भारतीय ललनाओं की काठी पुरुष से कहीं अधिक कड़ियल होती है।"[20]

2) **सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका-** सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियां पुरुषों से आगे हैं ।आज कई सामाजिक संस्थान स्त्रियों की देखरेख में चलाए जा रहे हैं। सर्व शिक्षा अभियान से लेकर स्वच्छता अभियान में भी स्त्रियों का भरपूर योगदान है। समाज में स्त्रियों का योगदान समाज सुधार का भी है जहां ईर्ष्या-द्वेष, कुरीतियों, रूढ़ियों को खत्म करके समाज के सपनों को साकार करने का कार्य स्त्रियां कर रही हैं। तमाम धार्मिक अनुष्ठानों में भी स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान है। समाज सेवा के साथ-साथ मानव सेवा भी उनका मुख्य लक्ष्य है सामाजिक सद्भाव एवं समाज को बदलने में पुरुषों का योगदान स्त्रियों की अपेक्षा कम है। इसके साथ ही स्त्री सामाजिक विडंबनाओं से मुक्त होना चाहती है तथा अपनी मुक्ति की राह आसान करने के लिए सामाजिक क्षेत्र में उतर चुकी है। स्त्री मुक्ति को साकार करने में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है इसलिए सामाजिक पहलुओं को स्त्रियां सुधारने का प्रयास कर रही हैं।

समाज में जो भ्रामक बातें पैठ बना चुकी हैं कि एक स्त्री क्या कर सकती है? इस मुहिम को खंडित करने का प्रयास स्त्रियों ने किया है। लेखिका मृणाल पांडे कहती हैं कि- " स्त्री जो हमारे मध्यकालीन समाज में प्रायः मुक्ति के उलट बंधन और बुद्धि के उलट कुटिल त्रियाचरित्र का पर्याय मानी गई ,मुक्ति से जुड़कर उन कई पुराने संदर्भों से ही मुक्त होगी यह दिखने लगता है ।अब वह बंधन बन कर महाठगिनी माया की तरह दुनिया को नचाने वाली स्त्री जब मुक्त की बात करें तो जिन जड़मतिओं ने अभी तक उसे पिछले 60 वर्षों के लोकतांत्रिक राज्य- समाज की अनिवार्य अर्धांगिनी माना है उनको खालिश महसूस होगी।" [21]

3) **राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान-** राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान कम नहीं है। ग्राम पंचायत से लेकर राष्ट्रपति तक का सफर स्त्रियों ने तय किया है। वर्तमान में कई राज्यों के मुख्यमंत्री, राज्यपाल भी स्त्रियां हैं। शासन सत्ता को संभालने में जितनी निजी सोच स्त्रियों की है वह शासन स्तर पर हितकारी है। पिछले कुछ दशकों से स्त्रियों की भागीदारी राजनीति में बड़े स्तर पर बढ़ी है इसे नकारा नहीं जा सकता। राजनीतिक महिला सशक्तिकरण जितना बढ़ेगा उतना ही स्त्री जीवन को सुदृढ़ कर पाएगा। स्त्रियां भी चाहती हैं कि जब घर संभालने की जिम्मेदारी मेरे पास है तो देश संभालने में क्या रखा है? आज देश में महिला आरक्षण की बात होती है उस पर कितना अमल हो रहा है? यह भारतीय राजनीति में स्पष्ट देखा जा सकता है। स्त्रियाँ राजनीति के माध्यम से अपने अस्तित्व को पाना

चाहती हैं जिसे वह स्त्री- विमर्श के माध्यम से ढूंढने का प्रयास कर रही हैं। जब-जब महिला आरक्षण की बात होती है संसद से लेकर हर जगह हंगामा मच जाता है, जबकि चुनाव आते ही बड़े-बड़े दावे किए जाते हैं। भारतीय राजनीति में यह कितना बड़ा झूठ है यह देखने लायक है ?देश की राजनीति पर विहंगम दृष्टिपात करते हुए लेखिका मृणाल पांडे कहती हैं कि- " औरतों को विधायिका में बड़ी तादाद में लाने के खिलाफ हजार बहाने, लाखो तर्क पेश किए जा रहे हैं। कोई इस प्रावधान से गरीब, अनपढ़ औरतों पर पढ़ी-लिखी परकटी शहरी महिलाओं के प्रावल्लय का हौवा खड़ा कर रहा है, तो कोई प्रस्तावित कोटे को मनुवादी मानकर उसके भीतर जातीय कोठों की सेंध मारने को उत्सुक है। पार्टियों में मौजूद स्त्रियों की स्वामीभक्ति भी हमेशा की तरह दलगत आधारों पर बटी दिखाई दे रही है पर फिर भी इस तमाम वितण्डे के बीच गावों में राज-काज स्त्री शक्ति के साथ कवायद करता हुआ उन्हें लगातार सफल सफल बना रहा है। अगर इस वक्त उन्हें शीर्ष स्तरीय सहारा नहीं होता तो पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी सचमुच बिखर सकती थी और यह होता तो औरतों में सशक्तिकरण को गड्ढा खोदकर गाड़ने वालों की भीड़ उमड़ पड़ती।"[22]

भारतीय राजनीति में स्त्री विमर्श को राष्ट्रीय फलक पर स्थापित करने का मुहिम भले ही चल रहा हो मगर इसमें बाधाएं कितनी हैं? यह आए दिन देखने को मिलता है। एक शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि अपनी अस्मिता की मुद्दों पर स्त्रियों ने स्वयं संघर्ष किया है। समाज में

दलितों की तरह स्त्रियों का भी शोषण हुआ है और उनके लिए कानून बनाने वाला वर्ग पितृसत्ता वर्ग है, इसलिए स्त्रियों के पाले में स्त्री हितकारी कानून कंपास हुए हैं। यदि राजनीति में जिस दिन महिलाओं की भागीदारी का एक संभावित प्रतिशत बढ़ जाएगा उस दिन स्त्री विमर्श में अस्मिता शब्द ढूंढने की जरूरत नहीं। स्त्रियां अपनी लगन एवं मेहनत से उस मुकाम को छू भी रही हैं। जल्द ही यह बदलाव आएंगे, वह दिन भी दूर नहीं।

राजनीति के कटघरे में खड़ी स्त्री उन दावों को नकार देना चाहती है जिस स्तर पर उसे राजनीति में स्थान मिला। क्या स्त्री- अस्तित्व की जगह मिल पाएगी कैसे? यह भी एक बड़ा सवाल है। राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियों के योगदान को एक रिपोर्ट के माध्यम से समझा जा सकता है तथा इसमें सरकारों की भूमिका को देखा जा सकता है। पिछले कुछ सालों से दिल्ली के 134 म्युनिसिपल वार्ड तथा बंगलुरु के 100 वार्डों पर किए गए शोध ने ग्राम स्तरीय एवं विधानसभा दोनों स्तरों पर राजनीति की इस कड़ी में शहरी महिला पार्षदों की रोचक जानकारियां मिली हैं। महिलाओं के लिए इन निकायों में 113 सीटों का आरक्षण केवल लिंगगत नहीं बल्कि जांच के आधार पर किया गया था। उदाहरण- दिल्ली एम .सी .डी. की सीटों में 9 दलित स्त्रियों, 16 दलित तथा 37 स्त्रियों के लिए आरक्षित थी। 72 सीटें जनरल की थी। यह प्रक्रिया थी कि हर चुनाव में आरक्षित सीटें रोटेट की जाएंगी लेकिन 2002 में दिल्ली विधानसभा के चुनाव में सरकारों ने फ्रीज कर दिया (कादंबिनी पत्रिका की रिपोर्ट)।

रिपोर्ट के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्त्रियां राजनीति की हर बागडोर पर सफल रही हैं। मगर उनके साथ जो राजनीतिक चलावे हुए उसे कौन समझे? शिक्षित स्त्रियां पार्षद, ग्राम पंचायत सदस्य, मंत्री, विधायक, शिक्षिका की भूमिका में भी हमारे सामने हैं। बड़े-बड़े राजनीतिक लोग यह कहते हैं कि राजनीति में सरकारें महिलाओं के लिए ज्यादा सक्रिय हैं। यह केवल सरकारों के लिए ही नहीं नारीवादियों के लिए भी सवाल है कि यदि स्त्रियों को राजनीति में इतनी भागीदारी सरकारें दे रही तो फिर सारे कानून एक साथ पास क्यों नहीं होते? स्त्रीवादी लेखिका मृणाल पांडे का यह कथन बड़े-बड़े नारीवादियों को चौकाता भी है साथ ही साथ नारीवाद समझने के लिए मजबूर भी करता है। लेखिका मृणाल पांडे का मानना है कि- "बड़ी तादात में गृहिणियों का पार्षद बनना उन कट्टर नारीवादियों को चौक आएगा जो मानते रहे हैं कि घर की बेड़िया तोड़कर ही औरतें सक्रिय राजनीति में सफल हो सकती हैं। यह उनके लिए एक स्पष्ट संकेत है कि यदि नारीवादी दर्शन को राज- समाज में सामान्य जनों के लिए स्वीकार्य और व्यावहारिक राजनीति में असरदार बनाना चाहते हैं तो उनको गृहणियों और उनके घर-संसार चलाने से जुड़े अनुभव को भी आदर्श देखना होगा और नारीवाद की मुख्य धारा में पूरा महत्व देकर शामिल करना होगा।"[23]

4) **आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका**- घर-परिवार में आर्थिक भागीदारी में स्त्रियों का योगदान महत्वपूर्ण है। पुरुषों के साथ स्त्रियां भी आज सरकारी नौकरी कर रही हैं। मजदूरी या व्यवसाय के कार्यों में योगदान दे रही हैं।

आर्थिक परिस्थितियों को संतुलित करने में स्त्रियों का योगदान है। आज के दौर में स्त्रियां घर- परिवार ही नहीं देश की कमान संभाल रही हैं। आर्थिक क्षेत्र में वित्त मंत्री का पद लेकर देश को प्रगतिमान करने का काम स्त्रियों ने किया है। वर्तमान समय में वित्त विभाग निर्मला सीतारमण के पास है जो महिला हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि आर्थिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी कम नहीं है।

5) **व्यापार एवं उद्योग-धंधों के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान-** व्यापार या उद्योग- धंधों के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान पुरुषों से कम नहीं है। व्यापार के स्तर पर छोटी-छोटी दुकानें खोलना, खुद मेहनत करके छोटी-छोटी वस्तुएं बनाकर बेचना, स्त्रियों का अपना का खुद का कार्य है जिससे उन्हें कुछ पैसे मिल जाते हैं और वह घर चला पाती हैं। स्त्रियों के पास ज्यादा पैसे भी नहीं होते कि वह बड़ा व्यापार कर सकें लेकिन कुछ समय से स्त्रियों का शोषण (मार्केट) बाजार भी करने लगा है। स्त्रियों के नाम पर विज्ञापन करके व्यापार को आगे बढ़ाया जा रहा है। कुल मिलाकर योगदान एक ही स्त्री का ही है। यह बात और है कि इसमें ज्यादा फायदा स्त्रियों का नहीं हो रहा है लेकिन वहां भी स्त्री पुरुष को एवं बाजार को अंगूठा दिखा रही है कि जिस व्यापार को करने के लिए पैसे की आवश्यकता थी उसी व्यापार को स्त्री ने आसानी से हासिल कर लिया है। अब यदि वे (स्त्रियाँ) इसका विज्ञापन करेंगी तो वस्तु बिकेगी वरना व्यापार ही बंद हो जाएगा।

छोटे-छोटे उद्योग धंधे चलाने वाली स्त्रियां जैसे बीड़ी बनाना, माचिस बनाना, छोटे-छोटे खिलौने बनाना, पापड़ बेचने का व्यापार ,छोटे-छोटे घरेलू वस्तुएं बेचने का व्यापार स्त्रियों ने शुरू कर दिया है। इस दिशा में पुरुषों को पीछे कर दिया है। हां इतना जरूर है कि इस क्षेत्र में पैसे भले ही कम मिलते हैं लेकिन इन कार्यों में पुरुष पीछे हैं। मशीनीकरण हो जाने से स्त्रियों को थोड़ा घाटा जरूर हुआ है लेकिन अब स्त्रियां भी प्रशिक्षण लेकर इस क्षेत्र में आगे निकल रही हैं।

6) **शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की भूमिका-** शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियाँ अब पुरुषों से पीछे नहीं। लगभग हर कालेजों, स्कूलों एवं बोर्डों में लड़कियां प्रथम पायदान पर हैं। शिक्षित होकर देश के बड़े पदों पर जैसे- आईएएस,पीसीएस, सेना में विभिन्न पदों पर ,बैंकिंग के क्षेत्र में, रेलवे आदि क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं। स्त्री-विमर्श समझने वाले लोगों को यह पड़ताल करनी चाहिए कि स्त्रियों ने अपने अस्तित्व की पहचान के लिए और शोषण से मुक्त होकर पुरुषों को कितना पीछे धकेल दिया है?

सरकारी तंत्र अब तक जो केवल कागजों पर स्त्रियों को अधिकार देते थे अब वह केवल कानून का पाठ नहीं पढ़ा सकते उसे साबित करने वाली आधी आबादी यानी स्त्रियों का समूह पितृसत्ता के मायाजाल से आगे निकल चुका है। स्त्री शिक्षा पर मृणाल पांडे की रिपोर्ट कहती है कि किस तरह महिलाओं ने शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति की है। मृणाल पांडे के अनुसार- " इस तकनीकी विकास से औरतों को जोड़ने या उसकी जानकारी उन तक पहुंचाने

का कोई उद्यम नहीं किया गया। उल्टे उत्तर प्रदेश में लड़कियों के लिए विज्ञान और गणित वैकल्पिक तथा गृह विज्ञान पूरक विषय बना दिए गए। पंजाब की औरतों ने स्वीकार किया कि यदि गांव में उनकी बेटियों को हैंडपंप सुधारने या ट्रैक्टरों की मरम्मत जैसे काम सिखाए जाते तो भी उन्हें जरूर सीखने भेजेगीं। पर अपने गावों ,कस्बों में लड़कियों की शिक्षा के नाम पर अभी भी गृह विज्ञान की ही तोतारटंत चल रही है या मशीन सिलाई की क्लासें ।जो औरतें एक खटारा सिलाई मशीन से दो पीढ़ी काम चला रही हैं वे खेती और पशुपालन में काम आने वाले यंत्रों की जानकारी ग्रहण नहीं कर सकती।"[24]

देश में अब पुरुषों के समान स्त्रियों की साक्षरता में वृद्धि हो रही है। स्वतंत्र भारत में साक्षरता 7.93% से बढ़कर 65.46% हो गई है। निम्न तालिका में भी यह देखा जा सकता है-

भारत में साक्षरता प्रतिशत का विकास

जनगणना का वर्ष	कुल जनसंख्या(%)	जनसंख्या का प्रतिशत	
		पुरुष(%)	महिला(%)
1901	5.35	9.83	0.69
1911	5.92	10.56	1.05
1921	7.16	12.21	1.81
1931	9.50	15.59	2.93
1941	16.1	24.9	7.3
1951	18.33	27.16	8.86
1961	28.3	40.4	15.35
1971	34.45	45.96	21.97
1981	43.57	56.38	29.76
1991	52.21	64.13	39.29
2001	64.83	75.26	53.67
2011	70.73	87.23	79.31

Source : Census of India 1901..... & 2011

Literacy Rate India Census - 2011

1961 में लगभग 13% स्त्रियां साक्षर थी जो 1981 से बढ़कर एक चौथाई 2.49% साक्षर हुई तथा 1991 में एक तिहाई से अधिक 39.4 से अधिक पढ़ी- लिखी हैं। इसका कारण स्वतंत्रता के बाद हुए बदलावों से है। महिला साक्षरता नीति लागू होने से विकास हुआ है। देश में अभी भी 2011 की जनगणना के अनुसार केरल राज्य की स्त्रियों की साक्षरता दर 92.0% है।

एक खास रिपोर्ट की जांच पड़ताल के बाद यह भी पता चला है कि महिलाओं की शिक्षा के लिए निम्न योजनाएं लागू हुई जो इस प्रकार हैं-

(1) राष्ट्रीय महिला शिक्षा नीति 1958
(2) राष्ट्रीय महिला शिक्षा परिषद 1959
(3) हंसा मेहता समिति 1962
(4) कोठारी कमीशन व महिला शिक्षा 1964
(5) प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा
(6) महिला समाख्या कार्यक्रम 1988
(7) कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय
(8) प्राथमिक लेवल (एन. पी. ई. जी. ई. एल.) पर लड़कियों की शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम 2003।"[25]

7) **कला, संगीत एवं फिल्म के क्षेत्र में स्त्री-** भारतीय स्त्रियां कला, संगीत, फिल्म के क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं। संगीत के क्षेत्र में तो कई गायिकाओं और संगीत वादक स्त्रियों का नाम पहले से चर्चित है। संगीत के क्षेत्र में स्त्रियों के रुझान पर मृणाल पांडे का कथन है कि- "सच तो यह है कि कलाओं में संगीत के प्रति लगभग सभी स्त्रियों में एक सहज रुझान रहता है। इसकी वजह भी है मन में उमड़ा कोई भी विचार जब सहज आकार पाना चाहता है तो उसे एक दर्पण की जरूरत पड़ती है और अपनी अस्मिता से जन्मना वंचित स्त्री के लिए संगीत तथा साहित्य अपने खोए स्व की खोज एक सार्थक आलंबन बनकर उभरते हैं।"[26]

बड़ी तादाद में स्त्रियों ने संगीत को गले लगाया। संगीत केवल कंठ हार ही नहीं था जीवन जीने का एक माध्यम भी था। इससे स्त्रियों को कुछ

पैसे भी मिल जाते थे तथा इसी के माध्यम से घर से बाहर निकलने का मौका भी मिला। संगीत के क्षेत्र में सरबाई या अख्तरीबाई का नाम कौन नही जानता? ठुमरी की अप्रतिम गायिका रसूलनबाई या गंगूबाई हंगल अपनी गायकी के लिए प्रसिद्ध थी। संगीत के क्षेत्र में महिलाओं के लिए सबसे पहला प्रयास बड़ौदा के राजा महाराजा सयाजीराव ने शुरू किया। महाराजा सयाजीराव राजमहल में आश्रित कलाकारों के लिए विभिन्न श्रेणियों में तनख्वाह तथा भत्ते वगैरह की भी व्यवस्था की जिसके तहत उस जमाने के हिसाब से अच्छी खासी सैलरी दी जाती थी। सयाजीराव के समय में कोयलिया नाम से मशहूर हुई सुरीली गायिका हीराबाई बड़ोदेकर उर्फ चंपूताई का नाम प्रसिद्ध है।

बड़ौदा नरेश महाराजा सयाजीराव ने संगीत विद्यालय की स्थापना भी की। संगीत की दुनिया में बनारस की जद्दनबाई(नरगिस की मां) मेनका बाई (शोभा गुर्टू की मां) तथा सिद्धेश्वरी देवी (सविता देवी की मां) का नाम विख्यात है ।साथ ही बनारस की गायिकाओं में रसूलन बाई और बतूलनबाई का नाम प्रसिद्ध है। सदियों से चले आ रहे संघर्ष में स्त्रियों ने जीने का एक नया तजुर्बा निकाला। इसके माध्यम से स्त्री की अपनी पहचान हो सके जब स्त्रियां संगीत के क्षेत्र में उतरी तब उनके पास अनेक समस्याएं थी। तमाम सामाजिक रुकावट, सामाजिक विरोध, मर्यादा ,लज्जा सबको ताख पर रखकर अपने अस्तित्व का बीड़ा उठाया।

आज के समय में भी अलका याज्ञनिक, लता मंगेशकर सुनीधी चौहान, अनुराधा पौडवाल जैसी कई गायिकाएं संगीत के क्षेत्र में योगदान दे रही हैं। फिल्म जगत में कई अभिनेत्रियां आज भी कार्य कर रही हैं, साथ ही साथ एक ऐसा स्तर भी मजबूत हो रहा है जिसके माध्यम से स्त्रियां अपनी भावनाओं, विचारों एवं अपने अधिकारों को भी व्यक्त कर रही हैं।

8) **साहित्य एवं मीडिया में स्त्री-** साहित्यकारों की सूची में महिला लेखन शीर्ष पर है। आज साहित्य में कई लेखिकाएं समाज और साहित्य को एक लेकर लिख रही हैं। महिला लेखन स्त्री की सोच एवं मानवीय संबंधों की पड़ताल करता है। बड़े स्तर पर महिला लेखिकाएं जैसे- मृणाल पांडे, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, गीतांजलि श्री, सुधा अरोड़ा, सिम्मी हर्षिता, कृष्णा अग्निहोत्री भी लिख रही हैं, जिससे स्त्री लेखन को बढ़ावा मिल रहा है। स्त्री शिक्षा में भले ही कई बाधाएं आई हो लेकिन स्त्री ने अबला की परिभाषा को बदल दिया। साहित्य जीवन की गाथा जिसमें महिला रचनाकारों ने जीवन संघर्ष की ऐसी गुत्थी सुलझाई है जिसने स्त्री- विमर्श को बड़े पायदान पर पहुंचाने का काम किया है। साहित्य और कला दोनों क्षेत्रों में स्त्रियों ने दिक्कत उठाई है। यहां तक कि अपना निजी जीवन भी बलिदान कर दिया है। अपनी शौक, अपने इरादे, अपनी इच्छा सबको एक तरफ रख कर दूसरे के अनुसार जीवन जिया, लेकिन उसी में जी कर फिर अपने लिए रास्ता भी खोजा। मृणाल पांडे कहती हैं कि-" यह बात अलग है कि इन सबको निजी जीवन में इसका भारी मोल चुकाना पड़ा। 'आह से उपजा होगा

गान' लिखने वाले कवि को भी शायद पता नहीं होगा कि स्त्रियों की कलाओं के पीछे आह का कैसा मार्मिक आलोड़न छिपा है, जिसे हम देखकर भी नहीं देखते।"[27]

प्रेस में काम करने वाली स्त्रियां ज्यादातर छोटे शहरों से हैं और छोटे शहरों में काम करती हैं। जहां स्त्रियों को लेकर पुरुषवादी सोच भी प्रबल है। उनकी दिक्कतें (अंग्रेजी मीडिया) बड़े शहरों में काम करने वाली औरतों से ज्यादा कठिन है। भले ही इस क्षेत्र में महिलाओं को कम खर्चे पर रखा गया हो या उनको सुविधाएं दी जा रही हों लेकिन इसके माध्यम से महिलाओं ने अभिव्यक्ति का माध्यम चुना। अपनी दर्द की सच्चाइयों को अखबारों के माध्यम से, मीडिया उपकरणों के द्वारा समाज में, देश में रख सकी हैं। अपने योगदान एवं शक्ति के बल पर आज मीडिया में एक कार्यकर्ता के रूप में अपना स्थान भी बना रही हैं। भले ही आज स्त्री आजादी की बात हो रही है लेकिन पत्रकार और लेखिका मृणाल पांडे का यह कथन नारीवादियों के अफसोस का विषय है, जो स्त्री- विमर्श का मुद्दा उठाकर झूठे दावे करते हैं। मृणाल पांडे का कथन है कि- " मीडिया क्षेत्र में तमाम क्षितिज खुलने की खबरों के बावजूद भारत की अंग्रेजी छोड़कर लगभग हर भाषा में काम करने वाली अधिकांश महिला पत्रकारों के लिए पत्रकारिता में आने का मतलब आज भी रोज कुआं खोदना और पानी पीना ही है। तनख्वाह कम है ,सुविधाएं नगण्य, तरक्की नदारद और काम उबानप्रद। तिस पर घर- पड़ोस में लोक-निंदा का झंझट हर वक्त झेलना भी उनकी नियति है।"[28]

9) **खेल के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान-** केवल साहित्य एवं कला के क्षेत्र में ही नहीं खेल के क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ी है। क्रिकेट, हॉकी, खो-खो, तीरंदाजी, निशानेबाजी, फुटबॉल, बैडमिंटन, टेनिस आदि खेलों के क्षेत्र में स्त्रियां पुरस्कार भी प्राप्त कर रही हैं। पिछले कुछ वर्षो से खेल जगत में महिलाओं का पदार्पण करना सांस्कृतिक विरासत को भी आगे ले जाएगा। नारीवादियों को यह महसूस भी होगा कि स्त्री केवल पुरुष की दासी ही नहीं सहचरी भी है। कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में उतरना पितृसत्ता को चुनौती भी है। निश्चित ही आगे आने वाला समय स्त्रियों के पक्ष में होगा तब स्त्री- विमर्श की अभिलाषा शायद खत्म हो जाए। सानिया मिर्जा, साइना नेहवाल, मिताली राज, झूलन गोस्वामी, साक्षी सिंह ऐसे नाम है जिन्हें खेल जगत में आदर्श माना जाएगा। इसके अलावा स्त्रियां व्यास सम्मान, ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त कर रही हैं। जहां मध्यकाल तक नारी केवल मां, पुत्री, पत्नी के रूप में जानी जाती थी वही अब स्त्री समर्थ हो चुकी है। आत्मनिर्भर, स्वावलंबी होकर देश में महिलाओं का प्रतिनिधित्व भी कर रही हैं। इस प्रकार स्त्रियों का योगदान घर को ही नहीं समाज, राष्ट्र को मजबूती प्रदान कर रहा है। अपने ही घर में लक्ष्मी, सरस्वती का अपमान करने वालों को सोचना पड़ेगा कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' वाली उक्ति सार्थक हो चली है। मानवीय संबंधों में सामंजस्य बनाते हुए स्त्री एवं पुरुष को समानता के स्तर पर प्रगति करना होगा। निश्चित ही स्त्रियों का अस्तित्व ही आज स्त्री- विमर्श का विषय है। जैसा रमणिका गुप्ता कहती

हैं- "नारी को पुरुष से मुक्ति नहीं पुरुष मानसिकता से मुक्ति चाहिए जिसे स्त्री स्वयं ही पालती है, जब वह पुरुष बनने की इच्छा जाहिर करती है। जब तक स्त्री-पुरुष मानसिकता से मुक्त नहीं होगी उसकी अस्मिता बेमानी होगी।"[29]

स्त्री विमर्श का महत्व- स्त्री-विमर्श केवल महिलाओं के अस्तित्व की वकालत ही नहीं करता वरन् उनके जीवन की समस्याओं, प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भागीदारी एवं उनकी स्थिति का खाका भी तैयार करता है। अभी तक जिन जड़मतिओं ने स्त्री को बदतर, दुष्टा, फालतू ,बेलगाम, पशु समझ रखा था स्त्री- विमर्श ने उन्हें चौकया है। इस विमर्श के विरोध में न बोलकर विरोधी भी स्त्रियोचित भाषा बोलने लगते हैं लेकिन पितृसत्ता के आदर्शों में बधकर स्त्रियों पर हाथ उठाना नहीं भूलते। आज नियम- कानून लागू हो जाने से थोड़ी राहत जरूर मिली है फिर भी समय मिलते ही यह उसी पुराने ढर्रे को वकालत करते हैं कि प्राचीन युग या वैदिक युग में ऐसा था। वस्तुतः वैदिक युग की अच्छाइयों को ग्रहण करना मर्दवादी विचारधारा में शामिल ही नहीं है। मनुसंहिता को गलत ठहराने वाले स्त्रियों को भटकाने की बातें करते हैं।

वस्तुतः सामाजिक संदर्भ में लिखा गया मनुवादी साहित्य स्त्री- पुरुष के दो मुंहेपन की बात नहीं करता। लिंगीय समानता पर थोड़ी नियम- कानून कठोर जरूर थे लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि स्त्रियां समाज, साहित्य, कला, धर्म, राजनीति आदि से दूर रहें। बाद की पितृसत्तात्मक

व्यवस्था ने अपने कुछ पैमाने गढ़ लिए, धर्म ग्रंथों में जो कुछ अपवाद नियम थे उनके अंश को लेकर गलत व्याख्या की गयी।

वस्तुतः स्त्री-विमर्श का स्त्री अस्मिता के संदर्भ में महत्व है। इसे कई तरह से समझना चाहिए। रटी- रटाए स्त्री- विमर्श या समीक्षकों के व्यौरे पर बहस करते हुए अपनी एक रिपोर्ट भी तैयार करने की जरूरत है। स्त्री-विमर्श का महत्व एवं चिंतन स्त्री- विमर्श की पहल पर कहां तक सही है यह देखा जा सकता है-

(1) स्त्री- विमर्श का महत्व तभी सार्थक होगा जब स्त्री- मुक्ति का सपना साकार होगा। संसार में बहुत ऐसी स्त्री पुरुष हैं जो स्त्री मुक्ति का अर्थ नहीं समझते विमर्श तो दूर की बात है। अभी तक लोगों में मानवीय चेतना नहीं जग पाई है। स्त्रियों को स्त्री विमर्श की भावनाओं को समझना होगा। जिस दिन राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री-पुरुष का भेद मिट जाएगा, तू स्त्री है, मैं पुरुष हूं का भ्रम खत्म होगा तब स्त्री- विमर्श का पैमाना सही साबित होगा।

(2) आधुनिक समय में स्त्रियों को अधिकार जो भी मिले हैं बहुत सी स्त्रियां इन अधिकारों से अनजान हैं। खासकर कामकाजी स्त्रियों जिन्हें अपने दो वक्त की रोटी से मोहलत नहीं, जो कम पढ़ी-लिखी हैं। वे इस विमर्श के महत्व को कितना समझ पाएगीं। केवल विमर्श शुरू हो जाने से महत्त्व नहीं बढ़ता ।स्त्री की संवेदना एवं निजी अनुभवों के मानदंडों को समझना होगा।

(3) 'स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है' इस कथन के आधार पर स्त्री-विमर्श के पहलू को समझना होगा। यानी कि यह एक स्त्री है इस नजरिए से न देखकर बल्कि उसे एक मानवीयता का हक प्रदान करना होगा। उसे बचपन से ही लड़की होने की तालीम न दी जाए कि तुम लड़की हो तुम्हें हंसना नहीं चाहिए, ज्यादा न खाओ नहीं तो मोटी हो जाओगी, अकेले कहीं मत घूमो, केवल सिलाई-बुनाई की शिक्षा लो, बाहरी शिक्षा जैसे कला, संगीत, तकनीकी, शिक्षा तुम्हारे बस की नहीं है ऐसी बातें न की जाएं, बल्कि उनके महत्व को समझने की जरूरत है कि वे भी ऐसा कर सकती हैं। दुनिया के संपूर्ण कार्यों में यदि स्त्रियों की आधी से अधिक हिस्सेदारी हो जाएगी तब स्त्री- विमर्श का चिंतन साकार हो जाएगा तथा मानवीय संबंधों में फैले तलाक, बलात्कार जैसे घृणित सामाजिक रोग खत्म हो जाएंगे।

(4) पितृसत्तात्मक व्यवस्था के नियम से अलग हटकर सोचने की जरूरत है। स्त्री-पुरुष को एक साथ मिलकर कार्य करने की जरूरत है। पुरुषों की भागीदारी के बराबर स्त्रियों के कार्यों के महत्व की गणना की जानी चाहिए। शिक्षा, प्रशासन राजनीति तथा कंपनी में कार्य करने या व्यवसाय के क्षेत्र में पुरुषों की तरह कार्य करने का संबल प्रदान करना होगा। तुम स्त्री हो इस मानसिकता से न देखा जाए, बौद्धिक स्तर पर भी सफल बनाने का प्रयास किया जाए तथा सहयोग की भावना से मानवीय संबंधों को बेहतर बनाने की चेष्टा की जाए।

(5) स्त्री-विमर्श का महत्व इस दृष्टि से भी है कि स्त्रियों के अधिकारों, शिक्षा, नौकरी पेशा आदि में कितना इजाफा हुआ है? स्त्रियां किस क्षेत्र में कितना आगे हैं,? देश की बागडोर यदि स्त्रियों के हाथों में दे दी जाए तो वे किस स्तर पर विकास कर सकती हैं? महिला या स्त्री को केवल स्त्री ही न समझ कर मानवीय दृष्टि से उसकी अस्तित्व एवं आत्म सम्मान पर चिंतन भी जरूरी है।

स्त्री-विमर्श पर बात करते हुए राकेश कुमार की टिप्पणी है कि- "अभी तो स्त्री- विमर्श ने असंख्य समस्याओं, प्रश्नों से जूझा है। सदियों से चले आ रहे मौन को शब्द-अर्थ देने हैं। औरत के हक में विमर्श बनाना है। उन तथाकथित, नैतिक, सामाजिक मूल्यों, पितृव्यवस्थाओं को छिन्न-भिन्न करना है जो स्त्रियों की चेतना को अनुकूलित करते हैं। जो उन्हें खाँचों में डालकर निर्जीव प्राणी बनाते हैं।"[30]

स्त्री-विमर्श का उद्भव एवं विकास-

प्राचीन समय था जब स्त्रियां घर की चहारदीवारी के भीतर कढ़ाई बुनाई करने में अपना जीवन गुजार देती थी या घरेलू कार्यों को करते हुए अपना समय व्यतीत करती थी। परन्तु आज स्थिति बिल्कुल अलग है शिक्षा के प्रचार-प्रसार तथा आधुनिक युग में स्त्री की विचारधारा ही नहीं बदली बल्कि संघर्ष करने की क्षमता का विकास भी हुआ है। स्त्री विमर्श का पहला और मुख्य कार्य है- महिलाओं को अधीन करने वाली जटिल संरचना को पहचानना। यह संरचना जटिल जरूर है पर पहचानना कठिन नहीं है। स्त्री

को अपने वश में करने वाली सामाजिक संरचना में पितृसत्ता की महत्वपूर्ण भूमिका है। बीसवीं सदी के आठवें दशक तक आते-आते हिंदी क्षेत्र में स्त्री-विमर्श उभरा, साथ ही साथ नारीवादी लेखिकाओं, विचारकों, समाज सुधारकों ने पितृसत्ता को विशिष्ट अर्थ में परिभाषित करना शुरू कर दिया।

पितृसत्ता का मतलब है- पुरुष वर्चस्व। इसके जरिए सभी संस्थाएं स्त्रियों का शोषण और उत्पीड़न करती हैं। पितृसत्ता की महत्वपूर्ण परिभाषा गार्डा लर्नर ने दी है। गार्डा लर्नर के अनुसार- "पितृसत्ता परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुषों के वर्चस्व की अभिव्यक्ति एवं संस्थागत करण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय यह है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएं ऐसी सत्ता के पहुंच से वंचित रहती हैं।"[31]

पितृसत्ता का यह अर्थ नहीं है कि स्त्रियां पूरी तरह शक्तिहीन है या पूरी तरह अपने अधिकारों, प्रभावों और संसाधनों से वंचित हैं। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रत्येक पुरुष शक्तिशाली तथा प्रत्येक महिला सदा गुलाम है। खास बात तो यह है कि यह व्यवस्था जिसे हमने पितृसत्ता का नाम दिया है इसके तहत यह विचारधारा प्रभावी रहती है कि पुरुष महिलाओं से अधिक श्रेष्ठ हैं तथा उन पर सदा पुरुषों का ही नियंत्रण होना चाहिए। नारीवाद की चर्चा करने से पहले हमको पितृसत्ता को समझ लेना चाहिए क्योंकि पितृसत्ता एवं नारीवाद एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। सामान्य तौर पर

यह कहा जाए तो पितृसत्ता तथा नारीवाद को इस प्रकार देखा जा सकता है। पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है जो शताब्दियों से चली आ रही स्त्रियों की अधीनता का कारण है और नारीवाद इस गंभीर बीमारी का इलाज है। यानी नारीवाद औरतों के दास्तान् के कारणों और पितृसत्ता के कार्यों को समझने का प्रयास करता है लेकिन नारीवाद सिर्फ समझने पर ही अपने आप को रोक कर नहीं रखता बल्कि वह सदियों से सताई जा रही स्त्रियों के दासता के खिलाफ जिम्मेदारी समझता है और स्त्रीवादी संवेदना का विकास भी करता है।

पितृसत्ता क्या है?

पितृसत्ता का शाब्दिक अर्थ है- पिता या मुखिया (परिवार का मुख्य व्यक्ति) की सत्ता या शासन। सर्वप्रथम इस शब्द का इस्तेमाल एक विशेष प्रकार के पुरुष प्रधान परिवार के लिए किया जाता था यह एक बड़ा संयुक्त परिवार होता था जिसका प्रधान एक बुजुर्ग होता था। परिवार में इस मुखिया के नीचे स्त्रियां, बच्चे छोटे, मर्द तथा घर के नौकर होते थे। आधुनिक समय में इस शब्द का प्रयोग पुरुष सत्ता दर्शाने या अपनी शक्तियों का एहसास कराने के लिए किया करता था।जो कई तरह के हथकंडे अपनाकर स्त्रियों को नीचे पायदान पर रखना चाहते हैं। सिल्विया वैल्वी नाम की एक स्त्रीवादी लेखिका लिखती हैं कि- "यह सामाजिक ढांचों और रिवाजों की एक व्यवस्था है जिसके अंतर्गत पुरुष स्त्रियों पर अपना प्रभुत्व जमाते हैं, उनका दमन और शोषण करते हैं।"[32]

प्रत्येक सामाजिक संगठन और पितृसत्ता का एक नया खाका तैयार करता है। जिसके कारण सामाजिक, सांस्कृतिक रिवाजों में भी फर्क हो जाता है, लेकिन यह बात पहले से ही स्पष्ट है कि पितृसत्ता के बुनियादी सिद्धांत वहीं रहते हैं औरतों का दमन, शोषण और नियंत्रण। सामान्यतया स्त्रियों की जिंदगी में हर क्षण पितृसत्ता का नियंत्रण दिखाई देता है-

(1) **स्त्रियों की उत्पादक क्षमता एवं परिश्रम-** परिवार के अंदर की जाने वाली स्त्रियों की मेहनत और घर के बाहर स्त्रियों द्वारा की जाने वाली मजदूरी दोनों पर पुरुष अपना अधिकार रखते हैं। घर में स्त्रियां बच्चों को संभालती हैं, पतियों तथा परिवार के सदस्यों के लिए मेहनत करती हैं। सिल्विया वैल्वी इसे उत्पादन की पितृसत्तात्मक प्रणाली नाम देती हैं। इसके तहत पति तथा परिवार के अन्य सदस्य स्त्री की मेहनत का फायदा उठाते हैं। सिल्विया वैल्वी का मानना है कि औरतें उत्पादन वर्ग हैं और पति फायदा उठाने वाला वर्ग। औरत का दिन भर का उबाऊ काम और मेहनत को काम समझा ही नहीं जाता और उसे फिर पति पर निर्भर मान लिया जाता है।

औरत घर के बाहर जाकर नौकरी करें या मजदूरी करें उस पर भी पुरुष कई प्रकार नियंत्रण रखते हैं। पति चाहे तो अपनी पत्नी को बाहर जाकर कमाने या काम करने पर विवश कर सकते हैं। पति की इच्छा यदि वह चाहे तो थोड़े समय के लिए काम करने दे और उसकी कमाई रख लें। प्रायः यह देखने को मिलता है कि औरतों को अच्छे वेतन वाली नौकरियों

से दूर रखा जाता है मजदूरी के कार्य को स्त्री-पुरुष भले ही साथ करते हो लेकिन मजदूरी पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम मिलती है।

(2) **स्त्री पर शारीरिक अधिकार-** स्त्री की योनिकता पर भी पुरुष नियंत्रण है। औरतों की यह गिरी हुई स्थिति का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र है। ऐसे सामाजिक नियम बनाए गए कि पुरुषों की इच्छाओं एवं जरूरतों के अनुसार स्त्री को जीना चाहिए। सभी समाजों में विवाह संबंधों के बाद औरत को कोई जगह नहीं, औरत को काबू में रखने के लिए नैतिक और कानूनी हदे बनाई गई हैं। जबकि मर्दो के कारनामों की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। इसके साथ ही साथ समाज में अपने ही परिवार की औरतों यानी पत्नी ,बेटी आदि की यौनिकता का हक उन्हें है ।बलात्कार या धमकी के माध्यम से भी स्त्री के शरीर पर अधिकार रखने का प्रयास किया जाता है। स्त्री अपना मुंह न् खोल सके इसके लिए बलात्कार के साथ शर्मिंदगी और बेइज्जती का मायाजाल तैयार किया जाता है।

(3) **औरत की आजादी पर नियंत्रण-** स्त्रियों के आने-जाने पर प्रतिबंध रखा जाता है। इसके लिए भी कई तरीके अपनाए जाते हैं। औरतों के लिए पर्दा, सामाजिक क्षेत्र तक दायरे की सीमा, उस सीमा को छोड़ने पर रोक, स्त्रियों एवं पुरुषों के बीच कम संपर्क तथा स्त्री की स्वतंत्रता एवं रहन- सहन पर नियंत्रण रखा जाता है। इससे यह बात स्पष्ट है कि सभी फार्मूले स्त्रियों पर लागू होते हैं पुरुषों पर नहीं। यह सभी रोक, नियम स्त्रियों के लिए बने हैं पुरुषों के लिए कुछ नहीं।

(4) **संपत्ति तथा अन्य आर्थिक संसाधन-** संपत्ति तथा अन्य आर्थिक मामलों में पुरुषों का अधिकार माना जाता है। यह अधिकार एक मर्द से दूसरे मर्द के हाथ में अर्थात पिता के हाथ से पुत्र के हाथ में आते हैं। अगर कहीं औरतों को यह अधिकार मिला है तो वहां भी सामाजिक दबाव, रिश्तो की राजनीति से लेकर जबरदस्ती इस्तेमाल कर उन्हें अपने हक पाने से रोका जाता है। स्त्रियों द्वारा इस संसार में घरों के कामों में 60 % से अधिक का योगदान देती हैं जबकि उन्हें दुनिया की कुल आय का सिर्फ 10% मिलता है। वह केवल 1% संपत्ति के मालिक हैं, इसके अलावा इस संसार में समाज की विभिन्न संस्थाओं में पितृसत्ता किस स्वरूप में कार्य करती है वह इस प्रकार है-

परिवार- परिवार जो कि समाज का बुनियादी ढांचा है। यह सबसे अधिक पितृसत्तात्मक है। औरतों के मेहनत उत्पादन, प्रजनन, आजादी आदि पर अंकुश रखा जाता है। परिवार का मुखिया हद तक घर की स्त्रियों पर नियंत्रण रखता है। आठ यह बात स्पष्ट है कि पुरुष सदा ऊपर होता है। आज के लड़के कल के मुखिया बनेंगे जबकि स्त्रियां इस क्रम में नीचे रहेगीं। इसमें पुरुष दबावकारी है और औरतें दबी हुई हैं। घर में शुरू से ही ऐसा माहौल पैदा किया जाता है, लड़कों को रौब जमाने की सीख मिलती है तथा लड़कियों को दबने की तथा भेद- भाव स्वीकार करने की।

धर्म- अधिकांश धर्म भी पितृसत्ता को सर्वोपरि मानते हैं और पितृसत्ता को ऐसे पेश करते हैं कि जैसे वह ईश्वर का वरदान हो। धार्मिक संस्थाओं में तथा समाज में पहले देवियों की पूजा होती थी धीरे-धीरे उनका स्थान देवताओं ने ले लिया यहां तक कि मंदिरों में स्त्रियों के प्रवेश को निषेध बताया गया। उन्हें अपवित्र माना जाने लगा तथा हर जगह पुरुष का वर्चस्व कायम रहा।

कानून- अधिकतर देशों में कानूनी व्यवस्था पितृसत्तात्मक तथा बुर्जुआ दोनों है। पुरुष आर्थिक रूप से सशक्त वर्ग का पक्षधर है। परिवार, विवाह, उत्तराधिकार संबंधी कानून पितृसत्तात्मक व्यवस्था से जुड़े हुए हैं। महिलाओं को कानूनी तौर पर मजबूत बनाने के लिए भारत सरकार ने स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार दिए। अनुच्छेद 15 और 16 मौलिक अधिकार तथा अनुच्छेद 38, 39 राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के द्वारा स्त्री और पुरुष के मध्य केवल लिंगीय आधार पर भेदभाव का विरोध किया गया। अनुच्छेद 23 मानव के दुर्व्यवहार, बेगार तथा बलात श्रम का विरोध। अनुच्छेद 42 के अंतर्गत काम को न्याय संगत और मानवोचित दशा तथा प्रसूति सहायता।

"अनुच्छेद 37 पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन। सबसे पहले 1927 में अखिल भारतीय महिला सभा द्वारा महिलाओं में शैक्षिक और सामाजिक जागरूकता का कार्य प्रारंभ हुआ ।भारतीय संविधान में महिलाओं के सुधार के अन्य प्रावधान इस प्रकार हैं-

(1) "हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम और हिंदू दत्तक ग्रहण अधिनियम 1956

(2) दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1956

(3) दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961

(4) मातृत्व लाभ अधिनियम 1961

(5) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948

(6) कुछ अन्य विधान जैसे-

(क) धारा 304 (ख) दहेज के लिए मृत्यु (ग) धारा 366 अपहरण या किसी महिला को विवाह के लिए विवश करना।

(7) धारा 372 वेश्यावृत्ति के लिए बालिकाओं को बेचना।

(8) भारतीय दंड संहिता में कुछ व्यवस्थाएं-

(क) धारा 151ख -एक महिला जिसे गिरफ्तार किया गया है उसकी तलाशी महिलाओं द्वारा होनी चाहिए।

(ख) धारा 125- 128 तक महिला एवं बच्चों का भरण पोषण।

(ग) बाल विवाह प्रतिषेध विधि 1929

(घ) अनैतिक देह व्यापार प्रतिबंध 1956

(च) दहेज प्रतिबंध अधिनियम 1961

(छ) संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायत और नगरी निकाय में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण।

(ज) घरेलू हिंसा अधिनियम 2009"[33]

राजनीतिक स्थिति- ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक सभी स्तरों पर पुरुषों का बोलबाला है। हमारे देश का भाग्य तय करने वाले राजनीतिक दलों एवं संगठनों में मुट्ठी भर औरतें हैं।

संचार माध्यम- जबसे शिक्षा औपचारिक रूप से विद्यालयों एवं संस्थाओं में दी जाने लगी है वहां भी पुरुषों ने अपना वर्चस्व जमा रखा है। दर्शन, धर्म, विधि, साहित्य, कला विज्ञान सब उसके नियंत्रण में हैं। पितृसत्तात्मक शिक्षा व्यवस्था विशेषज्ञता को बढ़ावा देती है अर्थात ज्ञान के टुकड़ों में बांटकर डिब्बा बंद कर देती है। इस प्रकार सभी अधिकारों से स्त्रियों को वंचित कर देती हैं। सिल्विया वैल्वी कहती हैं कि- "ये शिक्षा औरत एवं मर्द को सोचने एवं समझने के तरीके में भिन्नता पैदा करती है जिसे स्त्री-पुरुष अलग-अलग ढंग से व्यवहार करते हैं, सोचते हैं, आशा रखते हैं कि उन्हें भेदभाव पूर्ण पुरुषत्व एवं नारीत्व की सीख दी गई है।"[34]

सन 1884 में एंगेल्स ने अपनी पुस्तक 'परिवार निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आरंभ में एक महत्वपूर्ण तथ्य पेश किया। एंगेल्स का विचार है कि- "स्त्रियों की अधीनता की शुरुआत व्यक्तिगत संपत्ति की शुरुआत के साथ हुई। उनके अनुसार तभी विश्व इतिहास में औरतों की हार हुई। उनका कहना है कि वर्ग विभाजन एवं स्त्री अधीनता ऐतिहासिक लक्ष्य है। एक समय जब वर्ग एवं लिंग के आधार पर कोई विभाजन नहीं था।"[35]

पितृसत्तात्मक संस्कृति से जुड़े एट्टीट्यूड से संघर्ष का अर्थ है सामंतवाद को चुनौती देना, शांति सभ्यता और संस्कृति को चुनौती देना। पितृसत्ता के विरोध में संघर्ष करने का अर्थ है स्त्री की स्वतंत्रता, स्वाधीनता एवं अस्मिता को महत्व दिया जाए ।जहां भी साहित्य में यह बात आए कि

स्त्री पुरुष पर निर्भर है इस अवधारणा को खंडित किया जाए। स्त्री-पुरुष के समानता वाले सिद्धांतों को पितृसत्ता विरोधी माना जाए। पितृसत्तात्मक व्यवस्था का जीवन स्त्री श्रम के शोषण पर टिकी है। ज्यादातर पुरुष चाहते हैं कि स्त्री घर में रहे, घर सँभाले जबकि कुलीन वर्ग चाहता है कि स्त्री श्रम के बाजार का हिस्सा बनें। इस अंतर्विरोध को स्थापित करने वाला नजरिया पितृसत्ता को चुनौती देने वाला होगा।

केट मिलेट का कहना है कि- "पितृसत्ता का अर्थ पिता की सत्ता नहीं है अपितु पुरुष सत्ता है ।इसे वह सार्वभौम शक्ति संबंध एवं प्रभुत्व के रूप में चित्रित करती है। यह पूर्णतः प्रतिगामी सत्ता है। यह वर्गीय विभाजन में प्रवेश करती है, विभिन्न समाजों और विभिन्न ऐतिहासिक युगों में मिलती है। यह प्राथमिक तौर पर शोषक सत्ता है।"[36]

प्राचीन काल से ही स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अंदर पिसती रही है ,उसके साथ शोषण एवं अमानवीय व्यवहार होते रहे हैं। स्त्री पर अधिकार का पैमाना पुरुषों का बनाया हुआ है। शुरू से ही स्त्री को अनाज पीसने, पानी भरने ,आदि कठिन कार्य करने का उत्तरदायित्व दिया गया फिर भी कहा गया कि स्त्री अबला है। पुरुष सरल कार्यों को अपने हाथ में ले लिया वहीं जब मशीनीकरण का दौर शुरू हुआ, जब अनाज मशीन से पीसा जाने लगा तब बटन दबाने का कार्य पुरुष अपने हाथ में ले लिया। इस संदर्भ में रविंद्र कुंजाराम ठाकरे का कथन है कि- "भारतीय नारी सदियों से पितृसत्तात्मक मानसिकता कीशिकार हुई है। पुरुष ने जब चाहा, जैसे चाहा उसे इस्तेमाल

किया है। उसे एक व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि वस्तु के रूप में स्वीकृत किया है। पुरुष का अहंकार नारी शोषण का मूल कारण है। इसी झूठे अहम के बल पर वह नारी के रूह तक को तड़पाने जैसे घिनौने कर्म करने पर उतर आता है।"[37]

जब से मनुष्य की उत्पत्ति हुई तब से अवलोकन किया जाए तो यह देखने को मिलता है कि प्रागैतिहासिक संस्कृति में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। खान-पान, निवास, उत्पादन तथा घरेलू कार्यों में स्त्रियों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। गोत्र संस्कृतियों में प्रवृत्त मातृसत्तात्मक व्यवस्था इसी की सूचना देती है। स्त्री के ऊपर उस समय के पुरुष का कोई आर्थिक अधिकार नहीं था इसलिए स्त्री-पुरुष दोनों सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर स्वतंत्र थे। कुछ समय बाद कृषि संस्कृति के विकास में मनुष्य ने पारिवारिक जीवन के बारे में सोचा। उत्पादन के साथ-साथ सामाजिक संस्कृति के क्षेत्र में पुरुष ने हक जमाना शुरू कर दिया जिससे स्त्री जाति का पतन शुरू हो गया और स्त्री अपने अधिकार के लिए संघर्ष करती रही।

जैसे ही स्त्री विमर्श की बात शुरू होती है वैसे ही सबकी जुबान पर सिमोन द वाउवार का नाम आ जाता है लेकिन स्त्री-विमर्श की पड़ताल करने पर यह पता चला कि सिमोन द वाउवार के बहुत पहले 1792 में मेरी ओल्सटन क्राफ्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'ए विंडीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वुमन' में स्त्री शिक्षा तथा स्त्री व्यक्तित्व के विकास पर बल दिया गया। मेरी वोल्स्टन क्राफ्ट ने पुरुष दृष्टि के विवेचनात्मक अस्तर पर अवलोकन

किया जो संपूर्ण यूरोपीय समाज में नारी मुक्ति के विकास में प्रेरणा स्रोत सिद्ध हुआ। इस पुस्तक को नारी- विमर्श की नींव तथा मेरी ओल्सटन क्राफ्ट को प्रथम स्त्रीवादी लेखिका स्वीकार किया जाता है। मेरी ओल्सटन क्राफ्ट के अनुसार- "यौन पहचान के आधार पर भेदभाव हेय है। स्त्री- पुरुष से कमतर नहीं है।"[38]

उन्नीसवीं सदी के उपनिवेशीकरण के समय शोषण के विरोध में पूरे विश्व में स्त्रियों के अधिकारों को लेकर आंदोलन छेड़ने का समय है। बदलते परिवेश में महिलाओं का पदार्पण साहित्य में होने लगा। स्त्रियां भी अपने विचार साहित्य के माध्यम से रखने लगी जैसे- उपन्यास, कहानी, आत्मकथा आदि। पाश्चात्य साहित्य में भी स्त्री समस्या का अंकन होने लगा। जान ऑस्टेन, शार्लोट ब्राटे, एलिजाबेथ गास्कल तथा, जॉर्ज इलियट की रचनाओं में इसका जिक्र मिलता है। 1854 में अमेरिकी पत्रकार फैनिकेन ने 'रूथ हाल' नामक आत्मकथात्मक उपन्यास लिखा जिसमें कि स्त्री को अपने पति की मृत्यु के कारण तमाम संघर्षों से गुजरना पड़ा। 1866 में लूजिया मेंय आल्कट ने 'अ लांग फेटल लव चेस' नामक स्त्रीवादी उपन्यास लिखा जिसमें एक स्त्री अपने धूर्त पति से बचकर भागती है और अपना अस्तित्व बचाती है। इस समय के नाटककारों में हेनरिक इब्सन का नाम याद किया जाता है। इनका नारीवादी लेखन मशहूर है यहां तक कि उनके नाटकों पर गांधीवाद के प्रचार का आरोप भी लगाया जाता है। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि मानव समाज के दोमुंहापन के कारण स्त्रियां अपने अधिकारों से वंचित रही

लेकिन स्त्रियों ने इस मुकाम को पाने के लिए संघर्ष भी किया। अधिकारों के लिए संघर्ष तब भी थे और आज भी हैं यह तो संघर्षों का ही फल है कि स्त्री आज सशक्त हो गई वरना स्त्रियों की करुण कथा कौन सुनता? 1843 में स्कॉटलैंड की विदुषी मरियोन रीड ने 'ए प्ली फ़ॉर वूमन' लिखकर स्त्रियों के मताधिकार की मांग की। स्त्री- विमर्श के धरातल पर फ्लोरेंस नाइटेंगल का नाम प्रसिद्ध है जिन्होंने स्त्री को पुरुष के बराबर एक मनुष्य घोषित किया और पुरुषों के छलावे को इंगित किया।

इग्लैंड में बार्बरा लेस्मिथ ने 1850 में अपने संपर्क में आने वाली बहनों को एकत्र करके स्त्री समस्याओं पर पहल शुरू किया। बाद में स्त्रियों का संगठन 'द लेडीज लनघाम प्लेस' नाम से मशहूर हुआ। स्त्रियों के लिए शिक्षा तथा कामकाज के अवसरों की मांग करती थी। विवाह संबंधी दोहरे रवैये की तरफ भी इन लोगों का ध्यान गया। इनके प्रयासों के कारण 1855 में विवाहित महिलाओं को संपत्ति का अधिकार देने के लिए जांच समिति का गठन किया गया। समिति ने 1848 में हुए प्रथम अमेरिकी महिला अभिसमय में भाग लिया था। स्मिथ के साथ बेस्सी रेनर पार्क्स एवं अन्ना जेम्सन स्त्रियों के अधिकार, शिक्षा एवं सामाजिक दायित्व लिखती रही। 1854 ई. में स्मिथ के नेतृत्व में इंग्लैंड में लागू करने के लिए स्त्री विषयक नियमों की एक संक्षिप्त रूपरेखा तैयार हुई। स्मिथ इंग्लिश जर्नल में स्त्री विषयक चिंता पर लिखती रही, बाद में 'सोसायटी आफ प्रोमोटिंग एंप्लॉयमेंट आफ वीमन'(एस पी .ई. डब्ल्यू). नामक संगठन स्थापित किया।

19वी सदी के बाद संसार की आर्थिक स्थिति में बदलाव तो हुआ लेकिन स्त्रियों की स्थिति में बहुत कम सुधार हुआ। सन 1859 मे हरिपट मारटीनू ने 'एडिनबरो' पत्रिका में 'फीमेल इंडस्ट्री' शीर्षक से एक लेख लिखा। इस समय तक स्त्रियों को प्रवेश मिलने लगा तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए महिला कालेजों की स्थापना भी होने लगी थी। समाज में दबी, शोषित, अशिक्षित, आर्थिक रूप से कमजोर महिलाओं के लिए आवाज उठने लगी। इसी दरम्यान विवाहित महिलाओं को संपत्ति का अधिकार अधिनियम पारित किया गया तथा विवादित 'कंटेजियस डिजीज एक्ट' रद्द कर दिया गया। इतना ही नहीं इसके साथ पहली बार वेश्याओं के जीवन अधिकार की दशा और दिशा की बातें भी उठाई गई। स्त्री- विमर्श के परिप्रेक्ष्य में बीसवीं शताब्दी की स्त्री संगठनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उससमय ब्रिटेन में 1903 में स्त्रियों की मतदान का अधिकार स्थापित करने के उपलक्ष्य में 'सोशल एंड पॉलीटिकल यूनियन' आरंभ किया गया। 1950 में रूस में नारी सम्मेलन तथा 1910 में जर्मनी में द्वितीय सोशलिस्ट विमेंस कांग्रेस की स्थापना हुई। इसी बीच क्लारासेटिकल ने मार्च महीने की 8 तारीख को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया। 1911 में जापान में ब्लूस्टोकिंग्स ने एक स्वतंत्र महिला संगठन स्थापित किया ।1914 में अमेरिका में आलिस पाल ने 'अमेरिकन विमेन्स पार्टी' की स्थापना की।

पाश्चात्य जगत में आधुनिक नारीवादी आंदोलन तीन चरणों में देखने कोमिलता है। पहला चरण- यह धारा स्त्रियों की केवल समस्याओं पर ही

नहीं स्त्रीवादियों द्वारा किए गए कार्यों की भी व्याख्या करती है। बीसवीं शताब्दी तक आते-आते नारीवादी आंदोलन बहुत तेज हो गया। यहां तक कि स्त्रीवादी विचारधारा नए स्तर पर तर्कपूर्ण तथा अधिकारिक जूनून पैदा हो गया। स्त्रियों का मानना था कि अधिकार तो हमको पहले से मिले थे इसे हमें लागू करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस विचारधारा को प्रत्येक स्त्री तक पहुंचाया जा सके जिससे स्त्री किसी पुरुष पर अवलंबित न हो।

बीसवीं शताब्दी के दौर में दो लेखिकाओं या स्त्रीवादी विचारधारा पर क्रांतिकारी कलम चलाने वाली स्त्रियों का नाम आता है, जिनके नाम हैं वर्जीनिया वुल्फ तथा सीमोन द वाउवार। पहले चरण का नारीवाद स्त्री के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अधिकार की वकालत करता है। सामाजिक स्तर पर स्त्री की हैसियत क्या है? तथा लिंगभेद, लिंग वर्चस्व के पुरुषवादी मानसिकता की गहरी पड़ताल की गई है। वर्जीनिया वुल्फ ने स्त्रियों की स्वतंत्रता एवं अस्मिता को वास्तविक रूप से एक स्त्री का हक बताया। इनकी रचनाओं में 'ए रूम वंश आन' 1292 प्रसिद्ध है। इसमें लेखिका अपने कमरे की मांग करती है। अपना कमरा का मतलब है स्त्री की खुद की स्वतंत्रता जिसमें स्त्री अपने खुद के विचार दुनिया के सामने रख सके। ऐसी विचारधारा का उदय साहित्यिक संघर्ष के साथ साथ जीवन का संघर्ष दोनों स्तरों पर नारी पुरुष से बेहतर संसार स्थापित करती है। वर्जीनिया वुल्फ का कहना है कि- "स्त्री की मान्यताएं अलग होनी चाहिए पुरुषों से उनकी तुलना ठीक नहीं है। स्त्री लेखन भी इसी मायने में अलग है।"[39]

फ्रांस की प्रसिद्ध लेखिका सीमोन द वाउवार ने स्त्री लेखन में क्रांतिकारी जीवन की शुरुआत की। सीमोन द वाउवार के विचारों का हवाला देते हुए प्रभा खेतान कहती हैं कि- "स्त्री अमीर हो या गरीब स्वेत हो या काली अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। यह दुनिया पुरुषों ने बनाई पर स्त्री से पूछकर नहीं। फ्रांस की राज्यक्रांति हो या विश्वयुद्ध स्त्री से पुरुष सहारा लेता है और पुनः उसे घर लौट जाने को कहता है। वह सदियों से ठगी गई है यदि उसने कुछ स्वतंत्रता हासिल भी की है तो उतनी ही जितनी कि पुरुष ने अपनी सुविधा के लिए उसे देना चाहा। अतः सिमोन का मुक्ति संदेश उस आधी दुनिया के लिए है जो स्त्री कहलाती है।"[40]

स्त्री-विमर्श का दूसरा चरण 1960 से 1980 तक माना जाता है जिसमें विशेष रूप से स्त्री के अधिकारों तथा सांस्कृतिक शोषण के खिलाफ स्त्री स्वर को गति देने का समय था। अमेरिका की बेट्टी फ्रीडम की पुस्तक 'द फेमिनाइन मिष्टीक' (1963) से नारीवाद के दूसरे चरण का आरंभ माना जाता है। उस समय की मध्यम वर्गीय महिलाओं की आर्थिक स्थिति तथा घरेलू कार्यों का दस्तावेज है। मिस्टीक शब्द को लेकर लेखिका ने अनाम या उपेक्षिता अर्थ का उल्लेख किया है। स्त्रियों के जब निजी संसार पर बात होती है तब इस पुस्तक का नाम लिया जाता है। लिंग भेद की समस्याओं को दुनिया के सामने रखने के लिए स्त्री-विमर्श का दूसरा चरण महत्वपूर्ण माना जाता है। दूसरे चरण में कई लेखिकाओं ने स्त्री आंदोलन को लेखन

के माध्यम से आगे बढ़ाया जिसमें जर्मन ग्रीयर की 'द फीमेल युनक' 1970, केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' 1970, शुलामिथ फायरस्टोन 1970 दूसरी धारा की महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं।

1980 से 2000 तक के नारीवादी आंदोलन को तीसरे चरण के नाम से जाना जाता है। इसमें दूसरे चरण की कार्य विधियों का विस्तार है। शुरुआती दौर में नारीवाद की पृष्ठभूमि में रखा गया सिद्धांत तीसरे चरण में आते-आते उच्च मध्यवर्गीय नारीत्व के संघर्षों के साथ शोषित एवं असहाय स्त्रियों को संगठित करने का नया पैमाना था। इतना ही नहीं इस दौर में तीसरी लिंग अर्थात हिजड़ा, वेश्या, लिंग परिवर्तित या समयौनिक कुरीतियों वाले लोगों के जीवन एवं अधिकारों पर बहस शुरू हुई।

भले ही इन पर चर्चा होते-होते लोगों ने इन्हें दरकिनार कर दिया फिर भी इनका अस्तित्व उस समय खतरे में था जिसे समझने की सख्त आवश्यकता थी। दोहरी मार झेलने वाला यह वर्ग जीवन में संघर्ष करते हुए समाज में अपना स्थान पाना चाहता था। सरल एवं सुखद जीवन की आकांक्षा करने लगा था साथ ही साथ दलित जनजातिया आदिवासी औरतों की जीवन की त्राशदी के दस्तावेज खंगालने का प्रयास इसी दौर में शुरू हुआ। स्त्रियों को एक ओर अछूत भी माना जाता था दूसरी ओर उनका शोषण भी हो रहा था। यह विडंबना ही है कि एक ओर स्त्रियों को घृणित, दलित, असहाय, अछूत का दर्जा दिया जाता रहा वहीं दूसरी ओर उन पर जुल्म भी उठाए गए। इस तीसरे वर्ग ने दुनिया की हुंकार भरी तो नारीवाद

में रूढ़ियों का भंडाफोड़ भी शुरू हुआ। सामाजिक विपदाओं का अंकन भी साहित्य में होने लगा और जब इसके बाद उत्तर नारी-विमर्श शुरू हुआ तो इन सब का अस्तित्व भी एक नया आंदोलन या विमर्श के रूप में उभरा जैसे- स्त्री- विमर्श, दलित- विमर्श, किन्नर- विमर्श, आदिवासी-विमर्श आदि।

भारत में स्त्री-विमर्श:-

पश्चिम के नारीवादी आंदोलन की अपेक्षा भारत में स्त्री- विमर्श एक तीव्र विचारधारा के साथ शुरू हुआ। यहाँ तो प्राचीन काल से स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति सजग थीं तथा सभाओं, समारोहों, वाद-विवाद सब में भाग लेती थी। पुरुष- स्त्री दोनों सामाजिक स्तर पर बराबर थे। कुछ मामलों में स्त्रियां पुरुषों से आगे थी भले ही स्त्रियों पर कई तरह के आरोप लगे हों, लेकिन वैदिक कलाओं का निर्माण, वैदिक साहित्य का निर्माण, मंत्रोच्चारण आदि स्त्रियां करती थी। वैदिक काल में स्त्री शिक्षित और अपने संस्कारों के प्रति सजग थी। कन्याओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन दिया जाता था, उनकी अवहेलना नहीं की जाती थी, स्त्रियां ब्रह्मचर्य का पालन करती थी। "ऋग्वेद में स्त्रियां ब्रह्मवादिनी एवं मंत्रदृष्टा कहीं गयी हैं। लोपामुद्रा, श्रद्धा, कामायनी, यमी, वैवस्वती, पौलोमी, सची, अपाला, घोषा, सूर्या, शास्वती, ममता आदि ऋषिकाओं के नाम मंत्रदृष्टा के रूप में मिलते हैं। नारी शक्ति की दृष्टि से शक्ति सूक्त, आत्मविश्वास की पराकाष्ठा है। जो अन्न खाता है वह मेरी शक्ति से खाता है, जो देखता है मेरी शक्ति से देखता है, जो सांस लेता है,

कही हुई बात सुनता है वह मेरी ही सहायता से। जो मुझे इस रूप में नहीं जानते वह न जानने के कारण ही हीन दशा को प्राप्त होते हैं।"[41]

वैदिक काल में स्त्री- पुरुष में कोई अंतर नहीं था। दोनों एक साथ मिलकर जीवन के प्रति प्रत्येक पहलू पर विचार करते थे तथा कार्यों की भागीदारी में हाथ बटाते थे। किंतु एक ही समय में दो विचारधाराओं का जन्म होना भी समाज में एक क्रांति है जिसमें मातृसत्ता एवं पितृसत्ता दो विचारधाराएं थी। पूर्व वैदिक काल में परिवार मातृसत्ता पर आधारित था जिसमें नारी को विशेष रूप से राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक अधिकार प्राप्त थे ।आर्थिक क्षेत्र में देवी लक्ष्मी की महत्ता थी। ज्ञान के क्षेत्र में सरस्वती तथा शक्ति की उपासना का माध्यम देवी दुर्गा थी। यही कारण था कि भारतीय नारी को देवी का रूप माना गया। पुराणों तथा अन्य ग्रंथों में यह बात स्पष्ट रूप से मिलती है कि देवता भी शक्ति की उपासना करते थे। स्त्रियों के धार्मिक सद्भाव को नकारा नहीं जा सकता। भक्तिन होकर सामाजिक सद्भाव को ग्रहण करती थी। धार्मिक भाव को समेटे हुए कश्मीरी कवियित्रीयों का उल्लेख मिलता है। वे कहती हैं कि - "देव भी पत्थर, देवता भी पत्थर। रे पंडित तू किसे पूजता है। मन और प्राण एकीकृत कर उसी में जीवन का सार है। उनका कहना है कि पढ़ते-पढ़ते मेरी जीभ और तालु फट गये, सुमिरनी फेरते उंगलियां घिस गई, पर मन की द्वैत अवस्था दूर न हुई।"[42]

पूर्व वैदिक युग में नारी मातृशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित थी। परिवार में स्त्री का स्थान ऊंचा था। स्त्री को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। तब स्त्री मन बहलाने का माध्यम नहीं थी। स्त्री का अपना वजूद था। मातृसत्तात्मक परिवार होने के कारण स्त्री का पूरे परिवार पर अधिकार होता था ।वह परिवार की मुखिया होती थी। परिवार में स्त्री का आदेश या सलाह मान्य होते थे। वंश-परंपरा तब पति के नाम पर नहीं बल्कि पत्नी के नाम पर चलती थी। संपत्ति की उत्तराधिकारी तब पुत्र नहीं पुत्री थी। इस प्रकार यह देखने को मिलता है कि वैदिक कालीन समाज स्त्रियों का समाज था जहां वे स्वच्छंद रूप से अपने अधिकारों का पालन कर रही थी। स्त्रियां सामाजिक नियमों की अवहेलना नहीं करती थी, मर्दवादी विचारधारा की अपेक्षा अपनी विचारधारा, अपना तर्क प्रस्तुत करती थी। स्त्रियां शिक्षित होने के कारण आडंबरपूर्ण मान्यताओं को दरकिनार कर देती थी।

वैदिक संस्कृति का अध्ययन करने के बाद यह भी जानकारी मिलती है कि स्त्रियां केवल घरेलू कार्यों तक सीमित नहीं थी बल्कि कुछ स्त्रियां तो सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थी तथा दूत बनकर दौत्य कर्म कुशलता पूर्वक करती थी। क्षत्रिय बालिकाएं धनुर्वेद, युद्ध की शिक्षा भी ग्रहण करती थी। सेना में भर्ती होती थी तथा जरूरत पड़ने पर युद्ध भी किया करती थी। ऋग्वेद में इसके प्रमाण मिलते हैं। ऋग्वेद में घोषा रचित सूत्र में बघ्रिमती एवं विप्पला नामक दो स्त्री योद्धाओं की चर्चा है। विप्पला महाराज खेत की सेना में एक सिपाही थी। इतना ही नहीं राजा मुदगल की पत्नी मुद्गलानी युद्ध

में अपने पति के सारथी का काम किया। ऋग्वेद हुए (1,9,2,4) में नारियों के नृत्य- कौशल का उल्लेख मिलता है। स्त्रियां आर्थिक रुप से स्वतंत्र थी जिसका प्रमाण शिशु आंगीरस द्वारा एक ऋचा में कहा गया यह कथन है कि - "मैं कवि हूं, मेरे पिता वैद्य हैं, मेरी मां अन्न पीसने का कार्य करती है।"[43]

ऋग्वेद आख्यानों में स्त्रियों की एक लंबी सूची मिलती है जहां वे पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा सशक्त हैं। जिस नारी सशक्तिकरण की गुहार आज हो रही है वह तो वैदिक काल में ही स्त्रियों ने प्राप्त कर लिया था मगर बदलते परिवेश एवं भूमंडलीकरण के दौर में स्त्री को एक मात्र साधन समझा जाने लगा। स्त्री को भले ही व्यापार से लेकर ऑफिसों, कार्यालयों तक एक उपयोग के तौर पर देखा गया हो वहां की स्त्री पुरुष से कार्य क्षेत्र में आगे हैं। मार्केट के क्षेत्र में विज्ञापनों में चित्रित की गई स्त्री अपनी कार्यक्षमता के कारण व्यापार के क्षेत्र में पुरुषों को टक्कर दे रही है।

ऋग्वेद के पहले मंडल में 147वे सूक्त के तृतीय छंद की द्रष्टा ममता है। वह उतथ्य ऋषि की पत्नी हैं एवं दीर्घतमस मामतेय ऋषि की माता है। वहीं पर प्रथम मंडल में एक सौ छब्बीसवें सूक्त के सातवें मंत्र की दृष्टा ब्रह्मवादिनी रोमशा है वह बृहस्पति की पुत्री एवं भावभव्य की पत्नी थी ।संपूर्ण शरीर में घने रोमों के कारण पति ने उनकी उपेक्षा की। रोमशा कहती हैं कि-" हे पति राजन! जैसे पृथ्वी राज्य धारण एवं रक्षा करने वाली होती है वैसे ही मैं प्रसन्न चित्त रोमो वाली हूं। मेरे सभी गुणों को विचारों, मेरे

कामों को अपने सामने छोटा ना मानो। संभवतः यह पहला लिखित प्रमाण है जब किसी स्त्री ने अपनी क्षमता मूल्यांकन का समान अधिकार प्राप्त करने के लिए आवाज उठायी। यही स्त्री- विमर्श का प्रथम स्वर है।"[44]

इस प्रकार वैदिक युग से स्त्री-विमर्श के शुरुआत की पहली कड़ी मिलती है। इसमें लोपामुद्रा का नाम महत्वपूर्ण है। लोपामुद्रा अपने सूक्त में विदुषी स्त्रियों और योग्य विवाह की चर्चा करती हैं। वे कहती हैं कि जैसे मैं वर्षों पहले प्रभात से रात्रि तक सब अस्वस्था को जीर्ण करती हुई श्रम करती हूं! जैसे शरीर की अतीव अवस्था को नष्ट करने वाला काल लक्ष्मी को भी विनाशता है। वीर्यवान पुरुष अपनी पत्नियों को शीघ्र प्राप्त हो।

उत्तर वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति में थोड़ा परिवर्तन आया। यानी कि उनके अधिकारों में कटौती होने लगी मगर इसका मतलब यह नहीं था कि वे अधिकारों की योग्य नहीं थी। स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति का पता सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में मिलता है। उत्तर वैदिक युग में स्त्रियों पर सामाजिक पाबंदी लगाई जाने लगी थी। अब कन्या जन्म पर परिवार में अपशकुन माना जाने लगा फिर भी थॉमस महोदय का विचार है कि- "इसके बावजूद इस बात को स्वीकार किया जाएगा कि मध्य युगों की अपेक्षा उत्तर वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी।"[45]

रामायण तथा महाभारत काल में स्त्री जीवन विडंबनाओं से ग्रसित था। रामायण में यह बात स्पष्ट है कि राम राज्य में न कोई दुखी, न चिंतित, न सहाय होगा परंतु सामाजिक व्यवस्था में स्त्री अस्मिता चिंतन के

घेरे में थी। सीता की अग्नि परीक्षा कराने वाला यह समाज कब तक स्त्रियों को देवी कहेगा? अपने पति की आज्ञा पालन करने वाली उर्मिला अपना सारा जीवन पति के लिए समर्पित कर दिया। अपने पति, माता-पिता के लिए अपना तन मन ही नहीं अपनी सारी इच्छाओंका दहन उर्मिला ने किया ।कौन सा समाज उसे याद करेगा? यह समाज जिस समाज में स्त्री अस्मिता खतरे में थी। स्त्री की शक्ति, ओजस्विता और पराक्रम पितृसत्ता के लिए झूठी कड़ी थी मगर इस स्त्री का जीवन तो धरती की तरह विशाल होता है, सारी आकांक्षाओं, मनोभावों एवं जिजीविषा को त्याग कर पुरुष के लिए बलिदान हो जाती है, इसे कौन देखेगा? महाभारत काल में द्रौपदी ने जो अपमान सहा है इसे कौन देखेगा? महाभारत काल में द्रौपदी ने जो अपमान सहा क्या पितृसत्ता आज भी अपने आप को दोषी स्वीकार करेगा? नहीं कभी नहीं। सरेआम भरी सभा में द्रौपदी का अपमान होना क्या जायज था? जिस युग में स्वयं ईश्वर के रूप में कृष्ण अवतरित हो उस युग में स्त्री का ऐसा रुदन। जब-जब स्त्री का अस्तित्व अपमानित हुआ तब तक स्त्री- विमर्श अपनी नवीन धारा में अग्रसर हुआ।

नारी-विमर्श के संदर्भ में थेरी गाथाओं का उल्लेख मिलता है। थेरी गाथाओं का संबंध भारतीय प्रथम नवजागरण से है। नवजागरण मूलतः मानव कि वह चेतना है जो हर युग, हर परिस्थिति में क्रांति उत्पन्न करती है जिसके परिणाम स्वरूप मानव दो संस्कृतियों के टकराव से एक नवीन चेतना से जुड़ जाता है। प्रथम भारतीय नवजागरण लगभग ईसा पूर्व से

800 वर्ष तक माना जाता है इसके अंतर्गत उपनिषद, जैन, बौद्ध आंदोलन शामिल हैं। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जब दो धर्म जैन और बौद्ध का उदय हुआ उस समय यह धर्म एक नवीन विचारधारा को लेकर समाज के सामने आए जहां आडम्बरों का खंडन, ज्ञान में विश्वास, कर्म की महत्ता को महत्व दिया गया मगर महिलाओं की स्थिति जैसी की तैसी बनी रही। गौतम बुद्ध ने ज्ञान के उपदेश भले ही संसार के कल्याण के लिए दिए थे। भिक्षुओं के लिए भी व्यवस्था थी मगर भिक्षुणियों के लिए नहीं। अगर कोई स्त्री भिक्षुणी बन जाती थी तो उसके लिए तमाम नियम बना दिए जाते थे।

थेरी गाथा में अनेक वर्गों कि स्त्रियां शामिल हैं जिन्होंने भिक्षुणी बन अपने जीवन के भोगे अनुभवों को इन घटनाओं में पिरोया है। खेमा, सूजना, शैल सुमेधा राजवंश की महिलाएं थी। महा प्रजापति गौतमी, विजया, अभिरूपा, नंदा, सुंदरी, सोमा ब्राह्मण वंश की कन्याएं थी। गृहपति एवं वैश्य वर्ग की महिलाओं में पूर्णा, अनुपमा का नाम मिलता है। थेरी गाथा की अपनी पहचान है। यह पहचान स्त्रियों के अस्तित्व पर आधारित है। थेरी गाथा स्त्रियों द्वारा व्यक्त जीवन का हिस्सा है। अपनी करुण कथा का लेखन उस जमाने में स्त्रियों ने गाथाओं के माध्यम से किया यह उनका अपना संकलन है। जिसमें उनकी त्रासदी और हाहाकार का स्वर छुपा हुआ है। उनकी पहली पहचान स्त्री होने की है जो अपने आप को थेरगाथाओं से अलग करती है।

थेर गाथाएं प्राकृतिक वर्णन से जुड़ी हैं, जबकि थेरी गाथा स्त्रियों के संघर्ष की कथा है जहां स्त्रियों के उदगार फूटते दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर थेरी गाथा में स्त्रियों के जीवन का संगीत सुनाई देता है। डॉ भगवती सिंह उपाध्याय कहते हैं कि- "अत्यंत संगीतात्मक भाषा में आत्माभिव्यंजनात्मक गीतिकाव्य की शैली के आधार पर अपने जीवन अनुभव को व्यक्त करते हुए यहां बौद्ध भिक्षुणियों ने अपने जीवन काव्य को गाया है। नैतिक सच्चाई, भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि इन गीतों की मुख्य विशेषताएं हैं।"[46]

जो थेरियां निम्न वर्गों एवं निर्धन परिवारों से संबंधित थी उनकी गाथाओं का स्वर और भयावह है। इस संदर्भ में चंपा का नाम आता है जो एक बहेलियन् की पुत्री थी। भले ही स्त्रियों को बौद्ध संघों या बिहारों में मनाही थी लेकिन स्त्रियों की विचारधारा स्वतंत्र थी। अपनी संघर्षों के बल पर वे समाज में अपना स्थान निर्धारित करना चाहती थी। सुमंगल माता भी उन दरिद्र स्त्रियों की तरह हैं जिनका कोई नाम नहीं होता। किसी छाता बनाने वाले से उनका विवाह हो गया था। सुमंगल माता का जीवन अनुभव कटु सत्य हैं।

बौद्ध कालीन स्त्रियों में जितनी कड़वाहट थी वह वेदना के रूप में हमारे सामने आती है। उनका दंभ झूठा नहीं था, वह वास्तविक रूप से अपने मुक्ति की सीमा रेखा पर पहुंच चुकी थी। उनके अंकित अनुभव आधुनिक प्रतीत होते हैं। जैसे- आज की स्त्रियां कहती हैं-

"अहो! मैं मुक्ता नारी। मेरी मुक्ति कितनी धन्य है।

पहले मैं मूसल से लेकर धान कूटा करती थी,

आज उससे मुक्त हुई।"[47]

यहाँ थेरियों की भाषा आधुनिक चिंतन से उत्पन्न भाषा है। भाषा में बनावटी पर नहीं है। सीधी सपाटबयानी कहने की प्रवृत्ति है। हिंदी में सुधीश पचौरी ने स्त्री भाषा को स्त्री लेखन से जोड़कर देखा है। पचौरी जी का कहना है कि - "विकसित समाजों में स्त्री केंद्र जहां पहुंचा है वहां उसने आधुनिकता के तमाम मूल्यों एवं अधिकार केंद्रों को तोड़-फोड़ डाला है। यहां स्त्री लेखन अनिवार्यतया एक सर्ववर्सिव तत्व है। एक विध्वंसक तत्व है। उसकी अनिवार्य राजनीतिक भाषा है। वह सत्ता के प्रचलित विमर्श पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। 1996 में भाषा के भीतर स्त्री केंद्र की जगह खोजने के प्रयत्न में कई आधुनिक मूल्य और कई पद्धतियां नष्ट होती हैं। इनमें यथार्थवाद की कोटि पहली दुर्घटना बनती है।"[48]

इतिहास में यह बात स्पष्ट रूप से मिलती है कि बौद्ध काल में स्त्रियां समाज, राजनीति, धर्म के मामले में अव्वल थी पर स्वयं गौतम बुद्ध का दृष्टिकोण स्त्रियों को ऊंचा उठाने का नहीं था। स्त्री को केवल स्त्री ही समझा जाए ऐसी विचारधारा में सीमित कर दिया गया। स्त्रियों के मूल्य एवं 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' का सिद्धांत इस काल में फीका पड़ गया था। भिक्षुओं के लिए सरल तथा भिक्षुणियों लिए कठिन नियम थे। जीवन में संघर्षों को झेलने वाली स्त्री बौद्ध काल में भी संस्कार, धर्म और

राजनीति के चक्कर में पिस रही थी। स्त्रियों के बारे में बुद्ध का दृष्टिकोण क्या था? इन पंक्तियों में दिखाई देता है- " स्त्रियां संभवतः बुरी होती हैं लिहाजा गृहस्थ स्त्रियों की तुलना में बुद्ध ने भिक्षुणियों पर ज्यादा प्रतिबंध लगाया। यहां तक कि उन्होंने भी भिक्षुणियों को भिक्षुओं के बराबर का दर्जा तक नहीं दिया। उन्हें स्वतंत्र रूप से सोचने- समझने और रहने की आजादी नहीं दी। उन्हें हर हाल में भिक्षुओं के नियंत्रण में रखा।"[49]

बौद्ध काल का सांस्कृतिक उत्थान भले ही स्वर्णिम हो लेकिन सामाजिक परिवेश द्वंद्वात्मक बना रहा। जहां एक और मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता थी वहीं दूसरी ओर समाज में उपेक्षित माने जाने वाली स्त्रियों को सहारा देने की आवश्यकता थी पर यह ना हो सका। स्वयं गौतम बुद्ध जिनके भक्त आजकल हर जगह मिल जाते हैं, जिनको अंबेडकर और गांधी के साथ जोड़कर देखा जाता है। वे बुद्ध भी स्त्रियों के लिए नए नियम बना रहे थे। अपनेज्ञान के समुदाय में स्त्रियों को शामिल नहीं करना चाहते थे। केवल भिक्षुओं के लिए समुदाय में जगह थी, भिक्षुणियों के प्रवेश लेने पर कड़े नियम बना दिए जाते थे। स्त्रियों के बारे में बुद्ध की यह विचारधारा जानकर कोई भी हतप्रभ रह सकता है। आज विश्व के कई देशों में बौद्ध धर्म प्रचलित है, बुद्ध को आदर्श माना जाता है। तो क्या वे वही बुद्ध थे जिन्होंने स्त्रियों के बारे में इतना तक कह दिया था? जो बुद्ध और आनंद के वार्तालाप से मालूम होता है-

“आनंद ने पूछा- भंते स्त्रियों के साथ हम कैसा बर्ताव करें?

बुद्ध ने कहा-आनंद उनका अ-दर्शन (न देखना या उन्हें न देखना)।

आनन्द- भंते उनके दिखाई दिए जाने पर कैसा बर्ताव करेंगे?

बुद्ध ने कहा- आनंद उनसे (अनालाप) बात न करना।

आनंद- यदि उनसे बात करनी पड़े तो कैसा व्यवहार करेंगे?

बुद्ध ने कहा- आनंद उस समय अपनी स्मृति बनाए रखना चाहिए।

इसके अलावा बुद्ध ने आठ गुरु धर्म बताए थे जिनमें से तीन बातें बड़ी मार्मिक थी। जिसको समझ कर यह लगता है कि बुद्ध को स्त्रियों के सम्मान की चिंता नहीं थी। गौतमी को बुद्ध ने इसलिए संघ में शामिल कर लिया था कि ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले सील संपन्न बुद्ध उस कटाक्ष से बच जाएं जिस पर स्त्रियां सवाल खड़ा करने वाली थी ,लेकिन बुद्ध उन सवालों से बच नहीं पाए। गुरु धर्म में स्त्रियों के विरोध में जो बातें रखी गई थी वे इस प्रकार हैं-

1) कैसा भी कारण उपस्थित होने पर भी भिक्षुणी को किसी भिक्षु के प्रति आक्रोश या अपमान के शब्द नहीं प्रयुक्त करना चाहिए।

2) आज से भिक्षुओं के प्रति भी भिक्षुणियों का कुछ कहना पूर्णतः निषिद्ध किया जाता है ।हां भिक्षुणियों द्वारा कुछ प्रमाद होने पर भिक्षु उनको कुछ कह सकते हैं।

3) 100 वर्ष पूर्व उपसंपन्न हुई भिक्षुणी को आज उपसमपन्न हुए भिक्षु के प्रति अभिवादन (प्रणाम) सामने आने पर प्रत्युत्थान, अंजलिकर्म (हाथ जोड़ना) तथा समीचीकर्म (मैत्री भावना से व्यवहार) करना होगा।"[50]

भारत में स्त्री जागरण की जो धारा तेजी से चली आ रही थी यहां आकर और तेज हो गई। ज्ञान के क्षेत्र में जिस बुद्ध को महारत हासिल था उन्हीं के खिलाफ स्त्रियों ने आवाज़ उठाना शुरू कर दिया। और बुद्ध कोई जवाब नहीं दे पाए इतना ही नहीं उनकी पत्नी यशोधरा उनकी शरण में जाने से मना कर दिया था उन्होंने कहा कि -मैं अपनी शरण आप हूँ। बुद्ध जिस जीवन दर्शन को अपनाया था वहां स्त्रियों का कोई स्थान नहीं था केवल छलावा था। बुद्ध अपने धर्म ,दर्शन और प्रचार के बल पर संसार में अपना स्थान प्रतिष्ठित कर रहे थे। समाज में उपेक्षित वर्ग तथा स्त्रियों के लिए कठोर नियम बनाकर धर्म का पालन न करने का आरोप लगाया जाता था।

बौद्ध संस्कृति के बाद जब मुस्लिम सत्ता का आगमन हुआ तब स्त्रियों पर जुल्मों का कहर टूट पड़ा। मुस्लिम नियमों के अनुसार स्त्रियों पर शिकंजा कसा गया। अगर यह कहा जाए कि आज के समय में स्त्रियां जो तीन तलाक मुद्दे की बात कर रही हैं शायद यह उसी काल की देन है जब महिलाओं को कई शादियां करने पर मजबूर किया जाता था। स्त्रियां तो स्वतंत्रता चाहती हैं लेकिन उनको कुरान का पाठ पढ़ा कर तमाम यातनाओं के पीछे धकेल दिया जाता है। स्वतंत्र जीवन जीने वाली स्त्रियों के

संसार में मुस्लिम संस्कृति के नियम लागू हो जाने से स्त्रियों की विचारधारा में भी परिवर्तन हुआ।

मुस्लिम काल में स्त्रियों की स्थिति दयनीय बनी रही। मुस्लिम आक्रांताओं के आगमन के कारण भारतीय समाज की स्त्रियां आक्रमण का शिकार हुई। उनका आगमन इतना क्रूर निर्मम होता था कि भारतीय धर्म एवं अनुराग का उनके दिल में स्थान भी नहीं रहा। मुस्लिम आक्रमण के कारण हिंदू धर्म में विरोधी प्रवृत्ति उपजी। कट्टरता एवं निर्दयता का माहौल समाज में व्याप्त हो गया। परिणामस्वरूप समाज में बाल विवाह, दहेज प्रथा ,बहु विवाह तथा सती प्रथा नियमों में स्त्रियों की दशा को दयनीय एवं अपमानजनक बना दिया। आक्रमणकारियों के लूट की प्रवृत्ति एवं उनकी हिंसक प्रवृत्ति से बचने के लिए पर्दा प्रथा की शुरुआत हो गई। यही कारण था कि भारतीय स्त्रियों का स्थान केवल घर की चौखट तक सीमित हो गया।

मुस्लिम समाज भारतीय परिवेश में जहर घोलने का काम किया। एक साथ कई स्त्रियों से विवाह करना, जबरन स्त्रियों को उठा ले जाना सामाजिक परिवेश के खिलाफ था। यही कारण था कि समाज में बाल विवाह शुरू हुआ। बाल विवाह के कारण स्त्रियों का जीवन और बदतर होता चला गया। कम उम्र में विवाह हो जाने के कारण स्त्रियां शिक्षा से दूर हो गई। मुस्लिमों द्वारा कई विवाह किए जाने के कारण समाज में तीन तलाक की समस्या उत्पन्न हुई। दूसरी तरफ बाल विवाह के कारण विधवा स्त्रियों की

संख्या समाज में बढ़ने लगी ।विधवा विवाह तब समाज में स्वीकार नहीं था। इसलिए स्त्रियों को सामाजिक यातना भी झेलनी पड़ती थी। पूरी तरह से मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करने के लिए मंदिरों, मूर्तियों को तोड़ा जाने लगा और उनके स्थान पर मस्जिदों का निर्माण किया जाने लगा। हिंसक प्रवृति के कारण मुस्लिम संस्कृति मानवीय संबंधों के खिलाफ होती गई। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम संस्कृति का पतन शुरू हो गया। मुस्लिम संस्कृति पर बात करते हुए रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि- "देश की सुरक्षा रियाया की खुशहाली और साम्राज्य का विस्तार यह किसी भी शासन के लिए गौरव के कार्य हैं किंतु मुस्लिम इतिहासकारों ने अधिक प्रशंसा उन मुसलमानों और गाजियों की लिखी हैं जिन्होंने अधिक से अधिक मंदिर तोड़े और अधिक से अधिक लोगों को मुसलमान बनाया।"[51]

स्त्री-विमर्श के आगे की कड़ी में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। यह लोकगीत स्त्रियों के जीवन की दास्तान बयां करते हैं। लोकगीत हो या लोकोक्ति सब में स्त्रियों की वेदना तथा शोषण का चित्रण मिलता है। लोकगीतों में सामाजिक दर्द, मर्दवादी विचारधारा का अंकन भी मिलता है कि किस तरह इसी समाज में स्त्रियां अपने दुखों के आंसुओं को बहाती थी? इसलिए स्त्रियां सशक्त होकर अपने अनुभवों को लोकगीतों में ढालकर समाज के सामने रख दिया। आज गांव में अनपढ़ स्त्रियां विवाह के अवसर पर या अन्य उत्सव में जो लोकगीत गाती हैं उसमे स्त्रियों का छिपा दर्द सुनाई देता है। स्त्रियों के गीतों में उनकी आत्मकथा दिखाई देती है कि किस प्रकार

समाज की बुराइयों से लड़कर उन्होंने अपने अस्तित्व को स्थापित किया? गांव की स्त्रियों की गीतों में लम्बे दुख की कहानियां लोकगीतों में झलकती हैं। माता-पिता, पति के व्यवहार को लोकगीतों में पिरोने का का काम शिक्षित स्त्रियों ने किया है। लोग अपना निजी वृत्तांत लिखने में अपना जीवन गुजार देते हैं लेकिन इन स्त्रियों की गाथा को कौन लिखे? स्त्रियों के दर्द भरे गीत हमें सम्भवतः हर साहित्य में मिल जाते हैं खासकर हिंदी साहित्य में जरूर मिल जाते हैं। अवधी की लोकगीत हो या बुंदेली, गुजराती, मराठी आदि संपूर्ण साहित्य में स्त्रियों के दर्द भरे लोकगीतों की लंबी गाथा या करुण कथाएं मिलती हैं। वैदिक संस्कृति और थेरी गाथाएं दोनों ही लोकगीतों की शहजाद और शहधर्मा है। चंदा की कथाएं हिंदी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है उसके दर्द के गीत का एक अंश इस प्रकार है-

"रोय-रोय चंदा रानी यह कहे। सुन मुगला मेरी बात जी।
हम धन सीखी रसोईया। उठी के करहु जेवनार जी।
हसि-हसि मुगला लकड़ी लगावै। रोय- रोय चंदा से रहा नहीं जाय।
चिता बारि चंदा जरि गयी। चंदा तो हो गई राख जी।"[52]
(स्त्रियों के लोकगीत से)।

इस तरह की प्रतिभा भारत के ग्राम वधुओं के लोकगीतों, लोककथाओं में देखने को मिलती हैं, जहां पर कोमल हास- परिहास को वे एक योजना के आधार पर प्रयोग करती हैं। यह बात आज से नहीं बल्कि आदिकाल से मिलती है। यह अलग बात है कि स्त्रियों की अपनी वाचिक परंपरा में कोई

अपना संग्रहकर्ता, कोई अपने दर्द के गीतों को संकलित करने वाला नहीं मिला, जो कुछ सुरक्षित रहा वह केवल धर्म के आश्रय से, धर्मनिरपेक्ष सारी चीजें संघर्षशील रही। लोकगीतों में आज शोधकर्ता के रूप में रामनरेश त्रिपाठी का नाम आता है। अध्ययन के आधार पर रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि - "स्त्रियों के गीतों में पुरुषों का मिलाया हुआ एक शब्द नहीं है। स्त्री गीतों की सारी कीर्ति स्त्रियों के हिस्से की है। यह संभव हो सकता है कि एक-एक गीत की रचना में बीसों वर्ष और सैकड़े मस्तिष्क लगे हों पर मस्तिष्क थे स्त्रियों के ही, यह निर्विवाद है।"[53]

इस प्रकार लोकगीतों में चाहे जातें के गीत हों, कोल्हू के गीत हों या फसलों की कटाई- बुवाई के गीत हों सब स्त्री के दर्द की सच्चाई कोमलकांत पदावलियों में देखने को मिलती है। जिसे स्त्रियों ने बड़ी बेबाकी से खुलकर गाया है। सुमन राजे इस पर टिप्पणी करते हुए कहती हैं कि - "यह लोकगीतों का एकांत कोना है जहां स्त्रियां एक पहर रात रहे उठकर चक्की चलाती हुई अपनी व्यथा-कथा कहती हैं।"[54]

हिंदी साहित्य के आदिकाल की बात की जाए तो यह काल परिस्थितियों की दृष्टि से संक्रमण का काल रहा है, जहां स्त्री को वस्तु समझा जाता था, उसके श्रृंगारिक वर्णन होते थे। आदिकाल में स्त्रियां राजाओं की विजय का मार्ग निश्चित करती थी, यहां तक कि युद्धों में भी जाया करती थी। आदिकाल के कवि विद्यापति के गीतों में स्त्री संवेदना सुनाई देती है। विरह के पदों में भी स्त्रियों की अनुभूतियां मानव जीवन के लोकपक्ष

को व्यंजित करती हैं। इस प्रकार विद्यापति के गीत स्त्रियों की संवेदना तथा मार्मिक पक्षों को प्रस्तुत करते हैं।

अगर भक्तिकाल की चर्चा की जाए तो इस युग में स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। भक्ति काल के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हैं लेकिन इसकाल में मीरा और अंडाल का स्थान कम नहीं है। भक्तिकाल में मीरा का जो तेवर है, जो आक्रोश है वह भक्तिकाल के किसी कवि के काव्य में नहीं दिखता है। मीरा का काव्य स्त्री जीवन की पहचान है। एक तरह से कहा जाए तो भक्ति की स्वर्णिम भूमि में मीरा का स्थान तुलसी से भी श्रेष्ठ है। तुलसीदास ने स्त्रियों को मर्यादा, धर्म तथा सदाचार तक के क्षेत्र में ही श्रेष्ठ माना है लेकिन मीरा हर क्षेत्र में स्त्रियों को श्रेष्ठ समझती हैं, तथा स्त्री लेखन में मीरा का साहित्य अद्वितीय है। मीरा कहती हैं की 'रेजा रेजा भयो करेजा अंदर देखो धसके' या 'घायल की गति घायल जाने और न जाने कोई' अर्थात स्त्रियों की वेदना को समझने के लिए पहले स्त्री पक्ष के अनुभव में उतरना पड़ेगा, उनकी समस्याओं एवं सच्चाइयों से रूबरू होना पड़ेगा।

निजी जीवन के अनुभवों एवं कराहते दर्दों की अभिव्यक्ति मीरा की कविता में मिलती है। इनके काव्य में भाव विह्वलता और लोगों के हृदय में स्थान बनाने वाला आत्मसमर्पण वाला भाव भी है। यही कारण है कि मीरा की लोकप्रियता साहित्य जगत में फैल गई ।माधुर्य भाव लिए हुए मीरा तुलसी और सूर से आगे निकल जाती हैं। मीरा अभिजात्य वर्ग से संबंधित थी तथा उस वर्ग की परिस्थितियों तथा तानाशाही को देख चुकी थी इसलिए

मीरा को ऐसे जीवन से घृणा हो गई थी। भक्तिकाल की पहली महिला जिन्होंने राज्यसत्ता को खुलेआम चुनौती दिया था ।राजसत्ता का इतना बड़ा विरोध करना उस जमाने में स्त्री के लिए कठिन काम था लेकिन मीरा ने यह कदम उठाया। कहा जाए तो मीराबाई आधुनिक मीरा कही जाने वाली महादेवी वर्मा से आगे बढ़कर हैं। महादेवी तो नवजागरण के बाद साहसिक कदम उठाती हैं जब मशीनीकरण का दौर शुरू हो गया था, लोगों को अधिकार मिलने लगे थे तथा राष्ट्रीय आंदोलन का बिगुल बज चुका था लेकिन मीरा ने तो बहुत पहले यह बिगुल फूंक दिया था इसलिए मीराबाई महादेवी से कहीं आगे हैं ।जो विचारधारा महादेवी के समय में उपजती है उसकी पृष्ठभूमि तो मीरा पहले तैयार कर चुकी थी। मीराबाई ने भक्ति एवं माधुर्य के संयोंग से लिंग विषमता एवं सामाजिक विषमता दोनों को चुनौती दिया था। स्त्री के सामाजिक अधिकारों, खासकर स्त्री के तन एवं मन पर स्त्री के स्वामित्व की वकालत करने वाली मीराबाई पहली महिला हैं। सुधीश पचौरी कहते हैं - "फर्क यह है कि आधुनिक युग का स्त्रीवाद राजनीतिक मंतव्य से जुड़ा है किंतु व्यापारिक पूंजीवादी स्त्रीवाद में राजनीति का अभाव है। स्त्री जो उचित समझे उसे करने का अधिकार है। इसके लिए उसे लोकनिंदा या पारिवारिक कटुता है या पुरुष वर्चस्व के दवाओं के आगे समर्पण नहीं करना चाहिए।इस दृष्टिकोण के प्रति मीराबाई का समझौताहीन रवैया ही उनके काव्य की लोकप्रियता की धुरी है। मीरा के काव्य दूसरा प्रमुख तत्व है स्त्री अस्मिता के स्वतंत्र पहचान की स्थापना। बगैर पुरुष संदर्भ के पुंसवादी

समाज में स्त्री अस्मिता की पहचान बनना असंभव था किंतु इस असंभव को भी मीरा ने संभव किया सृजन के जरिए। स्त्री अगर कलात्मक सृजन का क्षेत्र चुनती है, बोलती है, लिखती है रचती है तो उसी अपनी अस्मिता को पुरुष के दायरे को तोड़कर निर्मित करने में मदद मिल सकती है। कविता गाना या भजन गाना सत्संग में जाना मेरा के बौद्धिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष का अंग है। इसी कारण राजस्थान ,उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, गुजरात आदि प्रांतों में वह प्रसिद्ध हुई।[55]

स्त्री की अस्मिता की छटपटाहट मीराबाई के क्रांतिकारी विचारधारा का द्योतक है। मीरा अपने खुद के पारिवारिक जीवन की विसंगतियो को सामाजिक तौर पर प्रस्तुत किया, व्यक्तिगत को सार्वजनिक बनाया। निजी को सार्वजनिक करना ही स्त्री के आधुनिकता की पहचान है, यही आधुनिक मूल्यबोध है। मीराबाई अपने जीवन के संघर्षों में राजसत्ता की उपेक्षा करती हैं वह उसका संबल नहीं चाहती। मीरा ने राणा के साथ विवाह का विरोध थी किया था। प्राचीन काल से ही स्त्री की विडंबना रही है की उसे किसी न किसी की होकर रहना पड़ता है चाहे वह माँ होकर रहे या पत्नी बहन या दासी। मीरा इन सबको ठोकर मार देती है। मीरा ने लिखा- वरजी मैं काहू की नाहि रहू।अपनी क्रांतिकारी विचारधारा के कारण मीरा पिता और पति दोनों का घर त्याग देती हैं तथा घूंघट का भी त्याग कर देती हैं।

अपनी कीर्तनिया विचारधारा से संपूर्ण मानव समाज को शिक्षित करने का काम मीरा ने किया। कबीर की तरह मीरा भी भक्तिकाल की क्रांतिकारी पुरोधा हैं लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि कबीरदास मीरा की तरह स्त्री के अस्तित्व को नहीं समझते बल्कि स्त्री की निंदा करते हैं। भक्तिकाल की जिस पृष्ठभूमि में स्त्री का सरोकार -सम्मान के साथ प्रतिष्ठित था। कबीर जैसे कवि ने उसकी निंदा की। मीरा की तरह विचारधारा भक्ति आंडाल लेकर उपजी और मीरा की तरह तूफानी आंदोलन चलाया। यहां तक कि स्त्री के अस्तित्व की पहचान करने में आंडाल के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

रीतिकाल में स्त्री केवल खिलौना बनकर रह गई ।राजाओं की सभाओं में स्त्रियों पर दोहे-छंद एवं सवैया लिखे जा रहे थे। श्रृंगारिक वर्णन ,हास-परिहास की मनोवृत्ति व्याप्त थी। स्त्री को केवल भोग्या समझा गया। रीतिकाल के विद्वान कवि बिहारी, भूषण, केशव आदि स्त्री को साहित्य में उचित स्थान नहीं दिया केवल श्रृंगारिक कविता तक ही सीमित रखा।

भारत में स्त्री जागरण का रास्ता स्वतंत्रता संघर्ष ने खोला ।1907 में जर्मनी में हुए समाजवादी महिला सम्मेलन में मैडम भीकाजी कामा ने भारतीय स्वाधीनता की आवाज उठाई, उनके हाथ में तिरंगा था।1917 में ब्रिटिश महिला एनीवेसेन्ट इंडियन नेशनल कांग्रेस की पहली अध्यक्ष बनी। इसी वर्ष मुस्लिम अधिवेशन शुरू हुआ जिसमें बहुपत्नीत्व खत्म करने का प्रस्ताव लाया गया। यह पता कर पाना थोड़ा कठिन है कि भारत में ही

स्त्रियों का अलग संगठित आंदोलन कब से शुरु हुआ? सामाजिक एकता में स्त्रियों ने हमेशा पुरुषों का साथ दिया। 1857 की क्रांति से देश की स्वतंत्रता की आशा जगी। इस क्रांति में स्त्रियों की भी भागीदारी थी इसकी शुरुआत मेरठ उत्तर प्रदेश से हुई और पूरे भारत में फैल गई। 1857 की शुरुआत लक्ष्मीबाई ने किया इतिहास में शायद पहली बार किसी स्त्री ने सेना का गठन किया और अंग्रेजों को परास्त किया।

अपने बलिदान से स्वतंत्रता की नीव रखी। रामगढ़ की रानी ने भी इस आंदोलन में योगदान दिया। असफल होने पर जंगल की शरण ली अपने प्राण तक न्योछावर कर दिया देश के लिए। स्वतंत्रता संघर्ष का आगाज लखनऊ से बेगम हजरत महल कर रही थी। 1857 की प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय हिंदी भाषी राज्यों में विशेष रुप से अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। कुछ समय बाद यह आंदोलन बहुत बड़ा रूप ले लिया। भारत की सोई जनता जाग गई, जर्जर भारत में फिर से नई ताजगी पैदा हो गयी। इस आंदोलन के संबंध में सुभद्रा कुमारी चौहान ने कहा कि- चमक उठी सन सत्तावन में यह तलवार पुरानी थी अर्थात विरोध की जो आवाज आई वह पुरानी तलवार से उठी।

सुभद्रा कुमारी ने जिस पुरानी तलवार की बात की वह सहानुभूति केवल तलवार से नहीं थी बल्कि उसके लक्ष्य और त्याग के उद्देश्य से भी थी। उनका मानना था कि स्वतंत्रता की चिंगारी अंतरतम आई थी। इस प्रकार स्वतंत्रता संघर्ष एवं हिंदी नवजागरण में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान

रहा। इस संदर्भ में मृणाल पांडे का विचार है कि- "यकीन नहीं होता कि इस अवध में उत्तर भारत में कुल पांचेक बरस पहले एक दौर वह था जब यकायक मर्दो की गैरहाजीरी या बेबसी की घड़ियों में अपनी विरासत की रक्षा करने को कठोर पहरा तोड़कर हरम की चहारदीवारी से निकली रानी झांसी और बेगम हजरत महल जैसी महिलाएं अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए निकल आई और जनता के गले का हार वन बैठी।"[56]

18वीं-19वीं के समाजसुधार या भारतेंदु की बात करें तो यह देखने को मिलता है की स्त्रियों की दशा सुधारने का का कार्य इस युग में हुआ लेकिन एक साजिश के तहत। स्त्रियों के केवल मुक्ति की बात की गई, अधिकार कम दिए गए, केवल मर्यादा की बात हुई, नैतिकता पर जोर देकर समाज सुधार का कार्य किया गया। जिस भारतेंदु को हिंदी नवजागरण का अग्रदूत कहा जाता है वही भारतेंदु अपनी पत्नी तथा समाज की रूढ़ियों में जी रही स्त्रियों की समस्या का समाधान नहीं कर पाए। पहली बात तो यह देखने को मिलती है कि- (1) बाल विवाह और बेमेल विवाह तथा ब्राह्मण समुदाय में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों की केशवचंद्र सेन, महर्षि फूले, राजाराम मोहनराय आदि ने खुलकर निंदा की। इनके विपरीत भारततेंदु समाज सुधार की नजर तो रखते थे पर वे यह नही भूला पाते थे कि गवनहारियों के रिश्तो के बावजूद अंततः वे एक पति, एक बड़े भाई और एक पिता के रूप में कुछ सम्मानित खानदान के वंशधर भी थे। स्वभावतः रसिक प्रेमी और संगीत पारखी होने की वजह से तवायफों के प्रति आकर्षित

होने से खुद को नहीं रोक पाते थे। इतना ही नही अपनी रक्षिता मल्लिका को खुलकर पत्नी बताना भी उनको स्वीकार नहीं था। अपनी 'जातीय संगीत' नामक लिखे भारतेंदु बाल- विवाह, शिक्षा, भ्रूणहत्या सरीखे विषयों से समाज को टकराने को जरुरी मानते हैं किंतु अपनी ही श्रृंगारिक रचनाओं में वे स्त्री को पारंपरिक नायिका भेद की चौहद्दी के भीतर भोग्या रूप में देखते दिखाते हैं। 1874 ई. में छपी उनकी 'बाला बोधिनी' पत्रिका में स्त्री के लिए आदर्श स्थिति का ब्यौरा है-

पितु, पति, सुत, करतल कमल ललित ललना लोग।
पढ़े गुनै सीखे गुनै.....
.....वीर प्रसविनी पुत्रवधू होय हीनता खोय।

भारतेंदु की जीवनीकार (प्यारे हरिचंद जू) डॉ प्रतिभा अग्रवाल कहती हैं कि- "मन तो उनका भटकता ही रहता था, एक तरह की बेचैनी, एक तड़प उन्हें कुरेदती रहती..... संतोष नहीं था। यह संतोष उनके निजी जीवन और सामाजिक परंपराआओं के बीच लगातार चलते अंतर्द्वंद से उपजा था और 35 वर्ष की उम्र के काल कवलित तक उनके साथ रहा ।"[57]

हिंदुस्तान ही नहीं जब पूरे विश्व में स्त्री- विमर्श या स्त्री मुक्ति की बात हो उस समय 'सीमोन द बाउवार' की कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' या प्रभा खेतान द्वारा अनुवाद की गई पुस्तक 'स्त्री उपेक्षिता' के पहले एक ऐसी पुस्तक की चर्चा की जानी चाहिए जहां से स्त्री वेदना उपजती है। स्त्री जीवन की विडंबना का खाका तैयार मिलता है। केवल हिंदी साहित्य ही नहीं विश्व

की किसी भाषा का साहित्य उसके संदर्भ में प्रसिद्ध पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' की चर्चा की जानी चाहिए, खासकर हिंदी साहित्य के जानकारों, आलोचकों और विद्वानों को एक दृष्टि स्त्री सहानुभूति के पक्ष में डालनी चाहिए। स्त्री गाथा का इतिहास इससे अच्छा कहां मिलेगा? सीमोन द बाउवार के समय में स्त्रियों को अधिकार मिलने लगे थे, अधिकार ही नहीं इतना तो था कि स्त्री अपना नाम बता सकती थी लेकिन सच्ची जुबानी की बात करें या स्त्री आक्रोश की क्रांतिकारी विचारधारा की बात करें तो 'सीमंतनी उपदेश' पहली पुस्तक है जिसने औरत जीवन की कठिनाइयां पेश की हैं।

इस पुस्तक को पढ़ने से पता चलता है कि स्त्रियों को पढ़ने लिखने तक की पाबंदी थी। स्त्री अपना नाम सार्वजनिक नहीं कर कती थी ।पति के नाम से उसे जाना जाता था। स्वयं 'सीमंतनी उपदेश' की लेखिका ने अपना वक्तव्य अज्ञात औरत के नाम से लिखा। इतनी पाबंदी की अपना नाम तक नहीं लिख की। भारत में स्त्रियों के क्या-क्या हस्र होते हैं इस पुस्तक में देखा जा सकता है? यह अज्ञात औरत कहती है कि भारत में स्त्रियों का जो हाल है उसे स्त्रियां चुपचाप सहन कर लेती हैं। तथा उन पर धर्म, मर्यादा के पालन की जिम्मेदारी भी दी जाती है, पालन न करने पर लांछन लगाए जाते हैं। बस स्त्री अपने पति, परिवार और बच्चों की जिंदगी का ठेका लिए रहे ,उसी में अपना जीवन व्यतीत करें, आगे कुछ सोचने का अवसर कहां? इस पुस्तक ने बड़े-बड़े स्त्री विमर्श के जानकारों लिए सवाल खड़े किए हैं। जैसे ही उनके स्मृति में 'सीमंतनी उपदेश' की बात आती है वे

स्त्री मुद्दों से कतराने लगते हैं और फिर सहमति से अपना पक्ष स्त्रियों के पाले में झोंक देते हैं तथा सहमत होने के बाद तब वे स्त्री के सर्वाधिकार की बात करने लगते हैं।

'सीमंतनी उपदेश' में यह हवाला मिलता है कि स्त्रियों का पूरा जीवन संघर्ष से भरा पड़ा है जो कार्य स्त्रियों को पहले करने पड़ते थे वही आज भी है। केवल संघर्ष और मुद्दे की बात करके उनका समाधान नहीं हो सकता। इस पुस्तक में स्त्री की दशा का एक अंश इस प्रकार है- "तीन घंटे उन्हीं के (पति) के खिदमत में लग गए, अभी तक अपने नहाने, खाने की कुछ खबर नहीं। इतने में एक बजा अब झटपट उठ। दो-एक लोटा पानी बदन पर डाला, पांव सूखे भु ही नहीं, आंखें सफा हुई ही नहीं। जल्दी से उठ आधी रोटी बड़े-बड़े लुकमें खाए ।मारे जल्दी के हलक पर अटक जाते हैं। आंखें निकली जाती हैं। उधर मारे खौफ के कलेजा धड़क रहा है, अगर 3:00 बजे आते ही खाना तैयार न हुआ तो खुदा जाने क्या हाल करें? खाना हो रहा है, इतने में लाला साहब आ पहुचे। दो-चार गाली दी। दो-एक लात मारी, झिड़क कर बैठ गए। बीवी मारे डर के हुक्का भर लायी। पंखा हिलाने लगी, पाँव दबाने लगी, आप खाना खा सैर को गए। तुम्हें फिर लड़कों की खिदमत। अब दरवाजा खोले इंतजार कर रही है कब आएं, कब आराम करें दस बज गए हैं नींद आ रही है।"[58]

यह दिनचर्या आज भी एक औरत की है। घर का सारा काम तथा पति, परिवार की सेवा करने के बावजूद भी स्त्रियों को यह दंश झेलना ही पड़ता है। सीमंतनी उपदेश की चर्चा के बाद हिंदी जगत में बंग महिला का नाम याद किया जाता है। इन्होंने बंग महिला के नाम से अपना साहित्य लिखा। उन्नीसवीं सदी के दौरान क्या कारण था कि स्त्रियों को नाम छुपा कर लेखन कार्य करना पड़ा? शायद किसी ने इस पर विचार नहीं किया होगा? अपना नाम छिपाकर लिखने वाली राजेंद्र वाला घोष ने नवजागरण की चेतना तथा स्त्रियों के जीवन की अनुभूतियों को अपने साहित्य में स्थान दिया। नाम छुपाकर लिखने की परंपरा केवल स्त्रियों में मिलती हे पुरुष लेखकों में क्यों नहीं मिलती? क्या स्त्री को अपनी आवाज उठाने या आत्मकहानी लिखने का हक नहीं था? द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त ने 'आंचल में है दूध और आंखों में पानी' लिखकर थोड़ी सहानुभूति प्राप्त कर ली थी, वहां गांधीवादी विचारधारा दिखाई दी थी। उर्मिला के विरह वर्णन को लिखकर गुप्त जी ने शायद कुछ न्याय कर पाया है स्त्री के साथ, वरना दिवेदी युग भी गांधीवादी आंदोलन की तरह आता और चला जाता।

स्त्री-विमर्श की तीव्र विचारधारा छायावादी साहित्य में मिलती है जहाँ उस आंदोलन का सूत्रपात स्वयं एक स्त्री कर रही थी वह महादेवी वर्मा थी। महादेवी वर्मा ने श्रृंखला की कडियां लिखी जो नारी उद्धार की गाथा है। जहां से स्त्रियों को शक्ति मिलती है, उर्जा मिलती है, संगठन बनाने की प्रेरणा मिलती है। महादेवी वर्मा ने बंग महिला की विचारधारा को आगे बढ़ाने का

काम किया। महादेवी ने भारतीय नारी के अस्तित्व को कई दृष्टिकोण से परखने का प्रयास किया। अपनी पुस्तक 'श्रृंखला थी कडियां' में नारी की रवैये को सहानुभूति के साथ पेश करती हैं। निश्चित रूप से ये वे कड़ियां हैं जहां नारी संवेदना की पहल दिखाई देती है। इतने आक्रोश की भाषा में पहली बार किसी महिला ने संसार में पुरुषों की विरोध में लिखने की कोशिश की तथा भारतीय नारी में शक्ति का संचार करने की हिम्मत की। महादेवी वर्मा कहती हैं कि- "भारतीय नारी भी जिस दिन अपने संपूर्ण प्राण प्रवेग से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं। उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं न मिलेंगे क्योंकि उनकी स्थिति का आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है। समाज में व्यक्ति का सहयोग और विकास की दिशा में उसका सहयोग ही उसके अधिकार शिक्षित करता है और इस प्रकार हमारे अधिकार, हमारी शक्ति और विवेक के सापेक्ष रहेंगे। यह कथन सुनने में चाहे बहुत व्यावहारिक न लगे परन्तु इसका प्रयोग निर्भ्रांति सत्य होगा। अनेक बार नारी की वाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन की ओर ध्यान देकर मैं उसकी शक्तियों को जागृत करके परिस्थितियों में साम्य लाने वाली सफलता संभव कर सकी हूं।"[59]

हिंदी में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद युग में स्त्रियों की कविताओं का जिक्र मिलता है जिसमें आधुनिक युग की समस्याओं को रखा गया है। नव मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाकर नया रास्ता तैयार किया गया है। आधुनिक युग में महिला लेखन तेजी से शुरू हुआ। स्त्रियां पुरुषों से ज्यादा

साहित्य रचने लगी। आधुनिक काल में गद्य विधाओं में जैसे- उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आत्मकथा, आदि लेखन में महिलाएं पुरुषों से कम नहीं हैं। नई कविता के दौर में स्त्रियों की कविताएं बंदूकमार लेखन का काम करती रही। नए दृष्टिकोण, नए अंदाज, नया भावबोध जीवन का दर्द, अनुभूतियों का प्रतिबिंब, नए शिल्प विधान के साथ दिखाई देता है। शकुंतला माथुर, कीर्ति चौधरी, सुमन राजे, स्नेहमय चौधरी, अनामिका आदि कवयित्रियों ने नारी जीवन के दर्दों को लिखा। नारी मुक्ति का प्रारंभ एक जंग से शुरु होता है। उड़िया कवियत्री सुचिता मिश्रा अपनी 'हिम्मत' कविता में कहती हैं-

जंग के बाद भी खामोश नहीं बैठूंगी,
फिर से लड़ूगीं,
सरहद लाघूगीं,
फिर से माटी, पानी, सूर्य, हवा से,
कहूंगी लौटा दो,
.....
नहीं तो लोग सोचेगें,
मैं हार गयी, खत्म हो गयी।
(सुचेता मिश्रा -'हिम्मत' कविता से)।

नई कविता के दौर में स्त्री अपनी अनुभव की प्रमाणिकता को बयां कर रही थी। इस प्रमाणिकता का अर्थ आंकती हुई रमणिका गुप्ता कहती है कि- "जब मनुष्य का मूल्य आका जाने लगा और उसके हक का सवाल उठा तो

मनुष्यों की ही एक प्रजाति स्त्री के हक का भी सवाल उठा, जिसे पितृ प्रधान समाज ने दोयम दर्जे का बना दिया था। उसकी मुक्ति कामना भी जागी। नारी स्वयं जागी उसने अपने अनुभव पर आधारित ऐसा साहित्य रचा जो उसके प्रति बरते गये भेदभाव को दर्शाने के साथ-साथ उसकी अनुभूतियों को दर्शाने लगा। जो प्रेम, घृणा, आपसी व्यवहार, सेक्स की रिश्ते, विवाह के बंधनों और दुश्मनी तथा दोस्ती में भी एक अलग एहसास की पहचान कराता है।"[60]

स्वातंत्र्योत्तर स्त्रीवादी साहित्य जीवन की नई व्याख्या करता है। स्वतंत्रता को हम स्त्री- विमर्श के संदर्भ में किस रुप में व्यक्त करें? क्या वह स्वतंत्रता सामाजिक, राजनीतिक या दैहिक भी हो? वास्तविक रुप से देखा जाए तो स्त्री को स्वतंत्रता चाहिए रुढ़िवादी बंधनों या विचारधाराओं से जिनमे स्त्री जन्म जन्मांतर से पिसती चली आई है, जिसको मानना स्त्री की मजबूरी थी । स्त्री को ऐसी स्वतंत्रता चाहिए जैसे- सामाजिक विचारों से, उस मानसिक त्रासदी से जो स्त्री को अपने जाल में फंसाये रखना चाहती है। जब स्त्री का मन विद्रोह करने लगता है तो वर्षों से बनी परंपरा को तोड़कर छिन्न-भिन्न कर देती है, नहीं मानती उन रिवाजों को जो केवल स्त्री के लिए बनाए गये हैं।

गद्य विधाओं में स्त्रियों का योगदान अत्यंत सराहनीय रहा है। आज के दौर में कई प्रसिद्ध लेखिकाएं चर्चा में हैं जो स्त्री आंदोलन, स्त्री मुद्दों तथा नारीवाद पर लिख भी रहीं हैं। जैसे प्रभा खेतान, ममता कालिया, मन्नू भंडारी,

मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, कात्यायनी मृणाल पाण्डे, क्षमा कौल, सिम्मी हर्षिता, सुधा अरोड़ा आदि। महिला लेखन स्त्री-विमर्श को नई दिशा दे रहा है। आधुनिक समस्याओं को लेकर लिख रहीं लेखिकाएं स्त्री मुद्दों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर व्याख्या कर रहीं हैं। अब पुरुषवादी वर्चस्व का पर्दाफाश हो रहा है। समस्त नियम, अधिकार, कानून सब स्त्रियों के पक्ष में बनने लगे हैं। राजनीति, कला, सिनेमा, मीडिया, साहित्य, धर्म, सामाजिक, व्यापारिक सभी क्षेत्रों में स्त्रियों का योगदान बढ़ रहा है। मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "यह उस स्त्री क्षमता का पारंपरिक खाका है जो खुद अकेले खाने या पहनने की कभी नहीं सोचती ,जिसके हर काम, हर सोच, के केंद्र में पूरा परिवार होता है। बच्चे, परिवार तथा समुदाय को लिए- दिए साथ-साथ बढ़कर जब बाहें फैलाए यह त्रिभुज अपनी प्रगति के शिखर पर पहुंचता है तो एक विशाल विस्तार का रूप ले लेता है। जहां सब के लिए पैर टिकाने की जगह है, किसी को बाहर नहीं था ढ़केला जा रहा।"[61]

1980 के बाद संचार माध्यमों द्वारा उत्तर नारीवाद शब्द का इस्तेमाल होने लगा। विचारधारा के साथ जीवन मूल्यों को जोड़कर देखा जाने लगा। उत्तर नारीवाद स्त्री विरोधी रवैया, यौन शोषण तथा अतिवादी प्रवृत्तियों को अस्वीकार करता है। वैचारिक स्तर पर उत्तर नारीवाद द्वारा किए गए सवालों को भी समकालीन स्त्री- विमर्श अपने विमर्श में देखने की कोशिश करता है। जब से विज्ञापन में स्त्रियों को प्रदर्शित किया जाने लगा तब से तिकड़मी साइबर संस्कृति ने स्त्रियों के मुद्दों को कमजोर बनाने लगा

है, जिस पर समकालीन नारीवादियों का ध्यान जाता है। फिर भी स्त्री चिंतन कि यह धारा इन सब मीडियाई अंदाज़ को भाप कर आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है।

उत्तर नारीवाद के परिप्रेक्ष्य में कई नारीवादी आंदोलनों का जन्म हुआ। ये सभी शाखाएं नारीवाद को नए रूप देती चली गयी फिर भी नारीवादी आंदोलन उग्र और तीव्र ही होता जा रहा है। यह एक मर्दवाद की साजिश ही है जो स्त्री- विमर्श को नए-नए रूप देता गया और ये जो नयी धाराएं विकसित हो रही हैं इनमें नवीन चेतना का विकास करने के लिए स्त्रियां आगे बढ़ रहीं हैं, जैसे- पहली शाखा उदारवादी नारीवाद- उदारवादी नारीवाद अथवा लिबरल फ़ेमिनिज्म। यह बुनियादी तथा व्यापक नारीवादी विचारधारा है, जो विश्व में प्रचलित एवं स्वीकार है। लिबरल का अर्थ है- आजादी। यह वस्तुतः व्यक्तिगत चेतना को प्रभावित या जन्म देने वाली धारणा है। यूरोपीय जागरण या रेनेसां के समय में यह धारणा अमेरिका यूरोप तथा पश्चिम में खूब प्रचलित रही। दार्शनिक विचारकों ने इसी को जीवन के केंद्र में रखा एवं भारतीय नवजागरण इसी से प्रभावित रहा। संपूर्ण प्रवृत्तियां भारतीय नवजागरण में देखने को मिलतीं हैं, जिसके कारण स्त्रियों की अस्मिता के बचाव के लिए बड़े-बड़े विद्वान, विचारक एवं साहित्यकार इस आंदोलन में जुड़ गए ।राजाराम मोहनराय, विवेकानंद, महात्मा गांधी, गोविंद रानाडे सभी ने स्त्रियों की समस्या को सामाजिक समस्या माना तथा मानवीय मूल्यों के साथ जोड़ने का प्रयास किया।प्रसिद्ध उदारवादी वेंडल के अनुसार-

“आज का उदारवादी नारीवाद आर्थिक तौर पर सामाजिक पुनर्गठन के लिए प्रतिबद्ध है। समान अवसरों के सृजन एवं उपयोग से उसके लक्ष्यों की पूर्ति होगी। इससे स्त्री जाति के सामाजिक उन्नयन का रास्ता भी खोल दिया जाएगा ।”[62]

दूसरी शाखा उग्रवादी नारीवाद है जिसने समाज में स्त्री की अस्मिता पर व्यापक रूप से चिंतन किया। यह नारीवाद अमेरिका में स्त्री जागरण के समय उनके अधिकारों के लिए शुरू हुआ था। बाद में इस आंदोलन की एक शाखा रेडिकल नारीवाद के नाम से प्रसिद्ध हुई ।रेडिकल नारीवाद स्त्रियों को प्रथम स्थान पर रखने की बात करता है साथ ही स्त्रियों की समस्याओं पर गंभीरता से चिंतन प्रस्तुत करता है। रेडिकल नारीवाद पुरुष आधिपत्य का विरोध करता है। उग्रवादी विचारधारा के अनुसार स्त्री पुरुषों से बुनियादी तौर पर भिन्न है और इस भिन्नता के जैविक एवं सामाजिक कारण हैं।

स्त्री चिंतन की अगली शाखा मार्क्सवादी नारीवाद है। यह नाम से ही स्पष्टहै कि यह विचारधारा कार्ल मार्क्स के वैचारिक दर्शन से प्रभावित है। यह नारीवाद सर्वहारा वर्ग को खासकर स्त्रियों को समाज में स्वतंत्रता, स्वायत्तता तथा सबको समान जीवन जीने का अधिकार देता है। इस विचारधारा में देखने को मिलता है कि जब स्त्रियां समाज निर्माण के कार्यों में आगे बढ़ेगीं तभी उनकी मुक्ति का रास्ता भी खुलेगा। मार्क्सवादी नारीवादी स्त्रियां वामपंथी आंदोलनों में भाग लेतीं हैं और बुर्जुआ विरोधी विचारधारा के प्रचार-प्रसार द्वारा मजदूरों का संगठन करतीं हैं। उनका प्राथमिक ध्येय

सामाजिक संगठन पर केंद्रित है। अतः परंपरागत मार्क्सवादियों से बढ़कर मार्क्सवादी हैं।

नारीवाद की अन्य शाखा समाजवादी नारीवाद है। फ्रेडरिक एंगेल्स की परिवार संबंधी मान्यताओं ने आधुनिक समाजवादी नारीवाद की नींव डाली थी। मुख्यतः समाजवादी नारीवाद स्त्री समस्याओं को सामाजिक संदर्भ में परखता है जैसे- वेश्यावृत्ति एक प्रकार की सामाजिक समस्या है। इस धारा के नारीवादियों के अनुसार स्त्री शोषण के अनुभव को व्यक्तिगत एवं बौद्धिक स्तर पर परखते हुए लिंगीय अस्मिता के आधार पर होने वाले अन्याय एवं मर्दवादी राजनीतिक के विरोध में मुक्ति- संघर्ष को आगे लाता है।

स्त्री- विमर्श की एक शाखा अश्वेत नारीवाद है, जिसे बाद में वुमनिज्म कहा जाने लगा, दोनों की विचारधाराएं एक हैं। इसकी संस्थापक मार्गरेट स्लोन हंटर थीं। मुख्यतः अश्वेत नारीवाद श्वेत नारीवाद का अनुकरण या अनुसरण नहीं करता है। इसके विपरीत वह लोगों की समस्याओं के संदर्भ में नारीवाद की अलग व्याख्या करता है और उसमें विस्तार करने का प्रयास करता है। अश्वेत नारीवाद ने वर्णवाद, नस्लवाद, जातिवाद और पुरुषवाद के खिलाफ सांस्कृतिक एवं आंदोलनात्मक कार्य किये। अश्वेत का मतलब है दलित औरत। यह सवर्ण नारीवाद की आलोचना करता है। तीसरी दुनिया के देशों में खासकर, अफ्रीका, अमेरिका में इस शब्द का इस्तेमाल ज्यादा हुआ। भारतीय स्त्री ग्रामवासिनी है। जंगल में रहकर अपना जीवन-यापन

करती है और जातिवाद के कारण दलित है। इस प्रसंग की दिशा में तीसरी दुनिया में इस स्त्री जागरण मूलक आंदोलन की आवश्यकता हुई।

पारिस्थितिकीय नारीवाद-

यह स्त्री-विमर्श की सामाजिक, राजनीतिक आंदोलनात्मक शाखा है जिसमें स्त्री एवं प्रकृति के शोषण को एक साथ रखकर देखा जाता है। इस स्तर पर यह द्विमुखी साम्यवादी आंदोलन है। कुछ स्त्रीवादियों ने पारिस्थितिकीय नारीवाद को घरेलू नारीवाद के विस्तार के रूप में देखा है। स्त्रियां प्रायः प्रकृति के निकट होती हैं। सृजनात्मकता उनकी पहचान है, परिवार की नींव है, प्रजनन एवं पाककला में अग्रणी होतीं हैं। स्थानीय एवं पारंपरिक स्तर पर भारत की कृषि प्रणाली पारिस्थितिकीय नारीवाद को व्यक्त करती है। जंगल ,आसमान, वायु, बारिश, धूप, नदियां, मिट्टी, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी व मानव के सहयोग के साथ यहां की खेती- बाड़ी संपन्न होती थी। जबसे मशीनें एवं कृत्रिम साधनों का प्रयोग होने लगा तब से विकास तो हुआ लेकिन इसने प्रकृति के संतुलन को बिगाड़ कर रख दिया।

नारीवाद की अंतिम शाखा सांस्कृतिक या कल्चरल नारीवाद है। यह धारा उग्रवादी नारीवाद से उत्पन्न शाखा है, जो स्त्रीत्व की संस्कृति का पक्षधर है। नारी में कुछ गुण पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा होते हैं जैसे- भावुकता, दया ,वैचारिकन्यायप्रियता आदि। इस पक्ष में वे पुरुषों से आगे हैं। इस धारा के नारी वादियों के अनुसार यह गुण स्त्रियों को जैविक रूप से प्राप्त है। यही कारण है कि स्त्रियां यौनभेद को जैविक स्तर पर स्वीकार करतीं हैं।

आज स्त्री- विमर्श इन सबसे आगे निकल चुका है। नये स्तर पर विचारधाराओं का सृजन हुआ है। समतामूलक दृष्टि का आगाज आज विश्व में व्याप्त है। स्त्री और पुरुष दोनों को समान मानना नारी- विमर्श का चिंतन है। लिंगीय स्तर पर दोनों (स्त्री-पुरुष) भिन्न जरूर है पर विचारधाराओं में सहयोग की भावना उत्पन्न करने का आंदोलन तेजी पर है। नारी- विमर्श अपनी करवट बदल रहा है। स्त्री होने का एहसास जब जब होगा तब तक स्त्री- विमर्श चर्चा के केंद्र में रहेगा। अब वह (स्त्री) पुरुषों की तरह हर कार्य करने में सक्षम है। शिक्षा से लेकर व्यापार तक तथा मीडिया से लेकर घरेलू स्तर पर स्त्रियां सशक्त एवं सुदृढ़ होकर योगदान दे रही हैं। जब तक स्त्री- पुरुष की विचारधारा में बदलाव नहीं आएगा कि वह स्त्री है, हम पुरुष है, तब तक स्त्री- विमर्श चलता रहेगा। स्त्री- पुरुष की खाईं को पाटकर मानवीय स्तर पर सोचने एवं समझने की जरूरत है।

स्त्री-विमर्श, स्त्री चेतना, स्त्री संवेदना, पदों की व्याख्या:-

स्त्री-विमर्श:-

स्त्री-विमर्श का मतलब है- 'स्त्रियों के बारे में बहस'। सामान्यतः बहस का अर्थ स्त्रियों की अस्मिता एवं अस्तित्व का मूल्यांकन है। नारी जीवन की विसंगतियों, विडंबनाओ तथा सामाजिक कुरीतियों का शिकार हुई स्त्री के मूल्य बोध की गहराई को नापना यह केवल एक विमर्श ही नहीं बल्कि 'अस्मिता- विमर्श' है जिससे स्त्री अपने जीवन में व्यक्त कथा को समाज के सामने उदघाटित कर सके। संसार में रहने वाले सभी वर्ग के लोग स्त्री

को केवल शोषित ,वंचित एवं घृणा की दृष्टि से न देखें बल्कि उसे सम्मान, सद्भावना के साथ अपने समान समझे। नारीवाद पर तो बहुत बातें होती हैं पर नारीवाद के केंद्र में क्या है इसकी जांच करना एक अहम मुद्दा है? सदियों से अपमानित, घृणित, समान दर्जा न मिलने वाली स्त्री के साथ जब सामाजिक असमानता एवं दबाव की बेड़ियां मजबूत होने लगी तब स्त्री अस्मिता का सवाल खड़ा हुआ।' युग युग से अवगुंठित नारी रहे नर पर अवसित' का नारा शुरू हुआ। स्त्री- विमर्श की बात करते हुए मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि-" नारीवाद पुरुषों का नहीं उनकी मानवीयता घटाने वाले उस क्षद्म मुखौटे का प्रतिकार करता रहा है ,जो मर्दानगी के नाम पर गढ़ा गया है और जिसके पीछे झूठी अहमन्यता और उत्पीड़क प्रवृति के अलावा कुछ नहीं है।"[63]

पश्चिम का जो नारीवाद शुरू हुआ वह स्त्रियों के लिए समानता ,स्वतंत्रता और स्त्री अस्मिता को लेकर उपजा। भारतीय स्त्री- विमर्श भी इसी का प्रतिनिधित्व करता है ,लेकिन पश्चिम में यह अधिकार बड़ी जल्दी मिल गए। भारत में स्त्री को संघर्ष करना पड़ा ।भारतीय परंपराओं में पल रही स्त्री के लिए चुनौतियां, मर्यादा का आरोप, टुच्ची राजनीति बाधक बनी। फिर भी संताप सहने वाली स्त्री इनके खिलाफ आवाज उठाती रही ।मेरा अपना भी वजूद हो, हम क्यों केवल एक हाड़- मांस का ही ढांचा बन कर रहे? केवल हमे देह के रूप में ही तौला जाता है, इन सब सवालों को लेकर जो पहल शुरू हुई वह स्त्री- विमर्श के केंद्र में था। स्त्रीवादी लेखिका रमणिका

गुप्ता का कथन है कि- "स्त्री- विमर्श ने औरतों में वस्तु से व्यक्ति बनने की समझ पैदा की है। स्त्री- विमर्श से स्त्रियों में ऑटोनामी यानी स्वायत्तता की इच्छा जगी है। उनमें निर्णय लेने की शक्ति पनपी है। हालांकि इतना ही पर्याप्त नहीं है, क्योंकि अब भी और बहुत कुछ करना बाकी है। भारत की 99% स्त्रियां सुहाग- भाग पति- परमेश्वर ,पारिवारिक इज्जत की अवधारणाओं से ग्रस्त हैं, ये अवधारणाएं एक ग्रंथि की सीमा तक पहुंच चुकी हैं ,उनके अंतर्मन में कुंडली जमा कर बैठी हुई हैं। हमें इनसे निजात पानी है तो अपने को इनसे मुक्त करना ही होगा।"[64]

स्त्री चेतना:-

नारी चेतना की बात की जाए तो स्त्रियां अपने अधिकारों ,अपने कार्यों को लेकर शंका की स्थिति में हैं। तत्कालीन सरकार एवं समाज ने उनके लिए कोई विशेष एजेंडा नहीं तैयार कर सका है जिससे स्त्रियां अपने आप को सुरक्षित महसूस कर सकें। आज भी आए दिनों घटनाएं होती रहती हैं, कुल गलतियां स्त्रियों की मर्यादा को लेकर कहीं जाती हैं।स्त्री कहीं भी जाए या कुछ भी करें लेकिन पुरुष के खिलाफ न करें ऐसे मानदंड गढ़े जाते हैं, पर यह कहां तक संभव है? एक न एक दिन इसके लिए स्त्रियों में चेतना जरूर आएगी। सिखी- सिखाई बातें, रटे- रटाए सवाल ,नियम या तर्क हर जगह लागू नहीं हो सकते। इसलिए जब कुछ नया सोचा जाता है तब चेतना का नया स्वरूप प्रकट होता है। स्त्री चेतना यानी स्त्री- मुक्ति की चेतना पर

अमल जरूरी है। अंधविश्वासों, रस्मों-रिवाजों एवं परंपराओं की शिकार स्त्री इनसे दूर हटकर अपनी मुक्ति की राह खोज रही है। वह नयी दुनिया चाहती है जहां पितृसत्ता का वर्चस्व न हो। रमणिका गुप्ता का यह मानना है कि- "स्त्री मुक्ति मनुष्य को सही मायने में मनुष्य बनाने की समानता, भाईचारे और आजादी की मुहिम है, किसी को दास बनाने या स्वामी बनाने की जंग नही। हाशिए की हर जमात अपने लिए नहीं, बल्कि हर मनुष्य के मानवीय अधिकारों के लिए लड़ती है तब वह मुक्ति, समानता और भाईचारे की बात करती है। स्त्री भी वही लड़ाई लड़ने को प्रतिश्रुत हो गई है।"[65]

स्त्री संवेदना:-

स्त्री संवेदना मानवीय संबंधों को केंद्र में रखकर स्त्री जीवन की सच्चाइयों पर अमल करती है। मनुष्य संवेदना के स्तर पर एक हो, छोटे-बड़े का फर्क, स्त्री- पुरुष का फर्क, जाति- समाज का अंतर मिटाकर समभाव की एकता में एक हो जाय। संवेदना की गहराइयों में जाने के लिए 'स्त्री जीवन की आत्मकथा' का अवलोकन करना होगा। केवल शहरी जीवन की स्त्रियां ही नहीं ग्रामीण जीवन की कमासुत औरतें जिनके पास केवल रोजगार ही एक औजार है, ऐसे दस्तूरों में संवेदना को खोजना स्त्री- विमर्श का लक्ष्य है। यदि एक स्त्री ही 'स्त्री जीवन' की कठिनाइयों को बड़ी ईमानदारी और बेबाकी से लिखें तो फिर इससे सच्ची समीक्षा या उदाहरण क्या हो सकता है? साहित्य जगत में बहुत सी महिलाएं हैं जो आज 'दुनिया के फलक पर' अपना निजी वृत्तांत इसी खाईं को पाटने के लिए लिख रहीं हैं वरना क्या

जरूरत है अपना जीवन सबके सामने उजागर करने का? अपना भोगा हुआ सच जब दूसरे को आंसुओं के बहाने को मजबूर कर देता है तब संवेदना प्रकट होती है। संवेदनाएं केवल आसुओं तक ही सीमित नहीं होती हृदय में एक जगह बना लेतीं हैं, मनुष्य उसी प्रेरणा का शिकार होता है जिससे जीवन के केंद्र में केवल मनुष्य दिखाई देता है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष।

शोध के आधार पर यह भी कहा गया है कि स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा संवेदनाएं ज्यादा होतीं हैं यही कारण है कि वे भावुक होतीं हैं। पुरुष इसी भावुकता का लाभ उठाकर शोषण करता है लेकिन समय के बदलते परिवेश में स्त्रियां अब केवल संवेदनात्मक स्तर पर ही नहीं तर्क एवं प्रमाण के स्तर पर पुरुष को जानने को इच्छुक हैं। रमणिका गुप्ता ने स्त्री- विमर्श पर जो एग्जिट पोल तैयार किया है वह इस प्रकार है- "आज स्त्री ने अपना 'भोगा हुआ सच' कहकर समाज को आइना दिखाने की हिम्मत जुटा ली है तो लोग तिलमिला रहे हैं। वे औरत की इस बेबाक सच्चाई को पचा नहीं पा रहे हैं, चूंकि यह पुरुष की औरत पर वर्चस्व जमाने की मानसिकता का नकार ही नहीं, बल्कि उसकी विकृतियों से मुखौटा उतारने की मुहिम भी है। यह समाज की उस व्यवस्था को चुनौती है जो एक ही गुनाह के लिए दो फैसले सुनाती है, बिस्तर बदलने वाली औरत 'छिनाल' और बिस्तर बदलने की परिस्थितियां पैदा करने वाला और बिस्तर में साझेदारी करने वाला पुरुष मर्द।"[66]

पदों की व्याख्या:-

स्त्री शब्द को लेकर कई व्याख्याएं की गयीं हैं लेकिन वेदों में नारी शब्द को केवल माता, बहन पत्नी के ही रूप में देखा गया है। वह एक पालन पोषण करने वाली आदर्श मां है, भाई के लिए सहायक बहन है और पति को परमेश्वर बनाने वाली पत्नी है। इतना ही नहीं वह एक शिक्षक, विदुषी, धार्मिक अनुष्ठानों को करने वाली, वेद मंत्रों का पाठ करने वाली स्त्री है। नारी शब्द के साथ उसकी मुक्ति का सवाल भी जुड़ा हुआ है। मुक्ति की आकांक्षा करने वाली स्त्री सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, विसंगतियों को सहती हुई अपनी नयी चेतना विकसित कर रही है। आज के समय में स्त्री के बारे में यह कथन उचित प्रतीत होता है जैसा इंदिरा गांधी ने कहा है। इंदिरा गांधी के अनुसार- "महिला मुक्ति भारत के लिए शौक की वस्तु नहीं बल्कि एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है ताकि राष्ट्र भौतिक, बौद्धिक ,आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक संतोषजनक जीवन की ओर अग्रसर हो सकें।"[67]

सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक संदर्भ में स्त्री विमर्श का स्वरूप-

सामाजिक :

स्त्री का सामाजिक क्षेत्र बहुत बड़ा है ।समाज में ही रहकर स्त्री घर -परिवार, समाज और राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। घर- परिवार की बंदिशें, परिवार में रहकर अपने कर्तव्यों का निर्वहन सब स्त्री जीवन के पहलू हैं। समाज में नारी का स्थान गौरवपूर्ण रहा है, उसे वैभव का सूचक एवं समृद्धि का आइना भी माना गया है किंतु मनुष्य ने स्वार्थ बस नारी को भोग्या समझकर उसकी स्थिति को निंदनीय बना दिया है। समाज में स्त्री को देवी एवं लक्ष्मी का रूप माना गया और इसी समाज ने उसे कुलटा कहा। स्वतंत्रता के बाद नारी की स्थिति में जो बदलाव हुए हैं वह सामाजिक दृष्टिकोण से स्त्रियों के लिए हितकर रहा। महात्मा गांधी के सहयोग से स्त्रियां देश की आजादी के आंदोलन में भागीदार बनी। गांधी जी ने स्त्री शिक्षा के कई उपबंध किए, साथ ही साथ लड़कियों को लड़कों के बराबर महत्व दिया। गांधीजी ने 'यंग इंडिया' में लिखा कि- "समाज में असमानता और सामाजिक अन्याय का प्रतिकार करने के लिए आवश्यक हो तो उन्हें (स्त्रियों) को विद्रोह करना चाहिए।"[68]

राजनीतिक:-

राजनीतिक भागीदारी में महिलाओं का लंबा इतिहास है। मुगल काल से लेकर भारत की आजादी तक राजनीति के क्षेत्र में स्त्रियां सक्रिय रही। आज भी राजनीति जगत में कई ऐसी महिलाओं के नाम हैं जो स्त्रियों की अग्रिम भविष्य का रास्ता तैयार कर रही हैं। मेनका गांधी, स्मृति ईरानी, प्रियंका गांधी, सोनिया गांधी, रीता जोशी कई ऐसी महिलाएं हैं जो आज भी राजनीति में सक्रिय हैं, ये सभी महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा बेरोजगारी के लिए कार्य कर रही हैं। राजनीति में पुरुषों के समान भागीदारी होने पर ये (स्त्रियां) भी अपने अधिकार को पा सकेंगी।

आर्थिक :-

आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियां अब केवल पुरुषों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहती हैं। स्त्रियां भी नौकरी करके बच्चों का पालन पोषण एवं घर परिवार का विकास कर रही हैं। पहले भी स्त्रियां पढ़ी- लिखी थी लेकिन नौकरी, व्यापार आदि में इनकी भागीदारी कम थी। जब से स्त्रियों ने चौखट लांघा है एवं सारी जिम्मेवारी अपने हाथ में संभाली है तब से हर क्षेत्र में पुरुषों के समानांतर कार्य कर रहीं हैं। एक समय था जब स्त्री को अबला कह कर दुत्कार दिया जाता था पर अब वह सारे सिद्धांत केवल कहने को हैं। व्यवसाय, उद्योग- धंधों, कारखानों, कंपनियों, प्रशासन व शिक्षा के क्षेत्र में अपना ज्यादा से ज्यादा योगदान देकर महिलाओं ने यह साबित कर दिया है कि कभी

कमजोर या कोमल आकलन की जाने वाली स्त्री आज फिर जाग उठी है। वह अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों को पहचान चुकी है। राजनीतिक एवं सामाजिक छलावे से दूर हटकर पुरुष मानसिकता को पहचान चुकी है। कृषि के कार्यों में ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की भागीदारी कम नहीं है वैसे भी घर के कार्यों मैं अनाज पीसने जैसे कार्यों में स्त्रियों का योगदान बराबर रहता है। आर्थिक रूप से स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है। वह खुद का रोजगार करके सुरक्षित एवं आत्मनिर्भर होना चाहती है।

सांस्कृतिक :

सांस्कृतिक मूल्यों को बचाए रखने में स्त्रियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। व्रत-त्यौहार, परंपराएं रीति-रिवाज का पालन जितना स्त्रियों पर थोप दिया गया, पुरुष वर्ग इससे मुक्त रहा। सामाजिक मूल्यों की अवमानना करने के लिए नियम बनाए गये। सांस्कृतिक विरासत की रक्षा एवं मानवीय मूल्यों के योगदान में स्त्रियों का पक्ष मजबूत रहा। सांस्कृतिक मूल्यों के साथ भौगोलिक मूल्यों का अपना महत्त्व भी है, इस आधार पर ही स्त्रियों ने मूल्यों को सुरक्षित करने का कार्य किया हैं। स्त्रियों ने अपने देश की भौगोलिक सीमा, सांस्कृतिक धरोहरों आदि को सुरक्षित करने एवं जीवन के संदर्भ में देखने का काम किया है। भारतीय संस्कृति में स्त्री को सदा संपन्न होने की बात कही गई है। भारतीय संस्कृति में विवाह को धार्मिक कार्य माना गया है, दांपत्य जीवन को सुखी बनाने के लिए जो संस्कार स्त्रियों

को पहले से मिल रहे थे आज भी मिल रहें हैं। भारतीय संस्कृति पर तंज कसते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'अगनपाखी' में लिखा है कि- "आमा ब्याह करना पाप नहीं तो ब्याह तोड़ना क्या पाप है? तुम अपने ऊपर पाप मत चढ़ाओ, तुम्हें तो वर के बारे में कुछ पता ही नहीं था, अब मैं अपनी अक्ल के हिसाब से जो करूं, नरक- स्वर्ग मेरे लिए बनेगा।"[69]

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री-विमर्श स्त्री जीवन के दुखों का, यातनाओं का, कुढ़न का दहकता दस्तावेज है। जीवन के प्रतिद्वंद्विता में अपने मुक्ति का द्वार खटखटाने वाली स्त्री क्या कभी सोच सकती थी कि उसकी जगह कहां है? क्या इस समाज में शोषण करने वाले, स्त्री-विमर्श के नाम का खाका तैयार करने वाले खिदमतगारों का उत्तर स्त्री दे पाती? स्त्री जब अपने जीवन की अनुभूतियां शब्दों में बिखेरती है तब जन्म-जन्मांतर की यादें 'घनीभूत पीड़ा' बनकर साहित्य में उतर जातीं हैं। क्या सभी सामाजिक सुविधाएं, सामाजिक सरोकार, राजनीति का बाजार, संस्कृति और सभ्यता की बेड़ियां स्त्री की पक्षधर थी? कभी नहीं, रोती-तड़पती स्त्री को समाज में जगह किस आधार पर मिल सकती थी? तू तो बदचलन है, घृणित है, छूत है, तेरे आने पर परिवार नष्ट हो जाएगा। ऐसी भ्रांतियां फैलाने वाला समाज और समाज के लोग कभी नहीं सोचे होंगे कि जिसे आज हम अबला, दलित, शोषित और जुल्मी समझते हैं वही मेरे छलावे को उजागर कर देगी।

स्त्री-विमर्श के जानकारों एवं जड़मतियों को महिला छलावे को बंद कर देना चाहिए। जिसे छला गया यदि वही कारीगरी को पहचान गई तो किसी छलोगे? कब तक रोजगार, झूठे वादे, फैशन की चकाचौंध में गुमराह करेगा स्त्री को समाज? परिणाम बड़ा आसानी का नहीं बल्कि धमाकेदार होगा। स्त्री- विमर्श स्त्री एवं पुरुष के मानवीय रिश्तो की बात करता है। स्त्री-विमर्श पुरुष विरोधी नहीं है बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ है। नारी-विमर्श के चिंतन पर बात करते हुए मन्नू भंडारी लिखती हैं कि- "आजकल स्त्री-विमर्श विषय एक फैशन बन गया है। जहां देखो वहीं इसकी चर्चा हो रही है और उसके मूल संदर्भो को जानने का और जीवन में उतारने का प्रयास कोई नहीं कर रहा है।"[70]

नारी-विमर्श पर लिखने वाले नारीवादी पुरुष या महिला साहित्यकारों ने औरत के जीवन को करीब से देखा है। यहां तक कि जीवन जिया और भोगा भी है। साड़ी के पल्लू में ढ़की रहने वाली स्त्री क्या कभी समाज में अपनी आकांक्षाओं को रख सकती थी? संभव था अथवा नहीं ऐसे सवाल मन के अंतस्थल को टटोलते हैं, जहां स्त्री जीवन का हाहाकार ही नहीं गर्जना और दमित भावना की सिसकियां भी सुनाई देतीं हैं। अपने ही समाज में मां, पिता, भाई के आगे हिंसा का शिकार हुई, सतायी गयी, जलायी गयी और फांसी के फंदे पर लटकायी गयी स्त्री क्या दोबारा स्त्री का जन्म लेने को सार्थक समझेगी? कुलदेवी और राजमाता की उपाधि देने वाला यह समाज

कैसे न्याय करेगा स्त्रियों के साथ? चिल्लाती, बिलखती, तड़पती स्त्री फिर तो यही कहेगी कि 'अगले जनम मोहि बिटिया न कीजौ'। नारी जीवन की कठिन परिस्थितियों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि स्त्री ने इस समाज में कितने अपमान सहें हैं। स्त्रियों के अधिकार मिलने के बावजूद भी उन्हें अंधेरे में रखने की साजिश चलती रही, लेकिन स्त्रियां अडिग हैं। नारी की सबसे बड़ी समस्या उसका शरीर (देह) है।

स्त्री अपने शरीर पर स्वतंत्र अधिकार चाहती है। पुरुष शादी करके उसके शरीर पर अपना अधिकार समझता है ।लगता है समाज में यह बंधन इसीलिए बनाए गए हैं पर स्त्री इससे मुक्त होना चाहती है। स्त्री-विमर्श के केंद्र में नारी मन की यही सपने खटक रहें हैं। जिस दिन स्त्री के शरीर पर से पुरुष का अधिकार हट गया और स्त्री अपने पैमाने को लागू कर लेगी उस दिन स्त्री मुक्ति का सपना समाज के पदचिन्हों को पीछे छोड़ देगा। नारी मन के मनोभावों को पररखते हुए लेखिका मृणाल पाण्डे कहतीं हैं कि- "पहले तुम्ही लोग मुझे तर्क सिखाते हो और जब यही तर्क मुझे साझेदारी की तरफ ढकेलता है तो तुम और तुम्हारे बाबूजी मुझे वहां से फिर औरतों को दूसरे दर्जे की दुनियां में ढ़केल देते हैं, जहां सिर्फ एकvउबान भरी कैद है, जिसमें अपने-अपने पतियों का नाम जपती हम दिन-रात भर बैठी रहे। क्यों?"[71]

अतः इस इस अध्याय में नारी विमर्श क्या है, उत्पत्ति, संवेदना, संचेतना, स्त्री-विमर्श का उद्भव एवं विकास, महत्व आदि पर चर्चा की गई है साथ ही साथ सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पक्षों को भी स्त्री-विमर्श के संदर्भ में उल्लेखित किया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :

1. स.प्रा. ठाकरे रविंद्र- प्रथम दशक के हिंदी साहित्य में स्त्री एवं दलित विमर्श, (2016) चिंतन प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 17
2. पाण्डे मृणाल- जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं, (2006) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. संख्या 52
3. चतुर्वेदी जगदीश्वर- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, (2000) अनामिका पब्लिशर्स, पृ.सं. 239 240
4. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. 110
5. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 98
6. पाण्डे मृणाल- परिधि पर स्त्री, (2017) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 47
7. पाण्डे मृणाल- परिधि पर स्त्री, (2017) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. संख्या 47

8. शर्मा नासिरा- औरत के लिए औरत, (2007) सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 193

9. अग्रवाल रोहिणी- स्त्री लेखन स्वप्न और संकल्प, पृष्ठ 12

10. त्रिपाठी हर्षवर्धन- नारी मुक्ति की अवधारणा (उपलब्धि)

11. पाण्डे मृणाल- स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, (2002) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 121

12. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ 305

13. यादव राजेंद्र- हंस (पत्रिका) अक्टूबर (1996) नई दिल्ली पृष्ठ सं. 75

14. डॉ अमरज्योति- महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी ढांचे पृष्ठ सं. 41

15. यादव राजेंद्र- अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य, (2008) राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 207

16. पाण्डे मृणाल- स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, (2002) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 123

17. नसरीन तस्लीमा- औरत का कोई देश नहीं, (2008) वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृ. संख्या 193

18. संपादक धर्मवीर- सीमंतनी उपदेश, (2004) वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 86

19. पाण्डे मृणाल- स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, (2002) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 82

20. पाण्डे मृणाल- स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, (2002) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 64

21. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 6 (भूमिका से)

22. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 127

23. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 101

24. पाण्डे मृणाल - स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, (2002) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 85

25. संपादक डॉ सियाराम - स्त्री विमर्श के विविध संदर्भ, (2013) ओमेगा पब्लिकेशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 321-322

26. पाण्डे मृणाल- ध्वनियों के आलोक में स्त्री, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 8 (भूमिका से)

27. पाण्डे मृणाल- ध्वनियों के आलोक में स्त्री, (2015)राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 53

28. पाण्डे मृणाल- स्त्री लंबा सफर, (2015)राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 118

29. गुप्ता रमणिका- स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, (2007) शिल्पायन दिल्ली, पृष्ठ संख्या69

30. संपादक तंवर कृष्ण- स्त्री विमर्श वैचारिक सरोकार और मृदुला गर्ग के उपन्यास, (2014) स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 20

31. यादव लालसा- स्त्री- विमर्श की कहानियां, (2013) हिंदी परिषद प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 18

32. भसीन कमला तथा (संपादक अंशुमालवीय) पितृसत्ता क्या है, गांधीनगर महोबा 210 427, पृष्ठ संख्या 4

33. संपादक डॉक्टर सियाराम- स्त्री विमर्श के विविध संदर्भ, पृष्ठ संख्या 213

34. भसीन कमला- निगत सईद खान तथा (अंशु मालवीय) नारीवाद क्या है, गांधीनगर महोबा 210 427, पृष्ठ संख्या 8, 9

35. भसीन कमला- निगत सईद खान तथा (अंशु मालवीय), नारीवाद क्या है, गांधीनगर महोबा 210 427, पृष्ठ संख्या 9

36. चतुर्वेदी जगदीश्वर- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श (2000) अनामिका पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या 243

37. ठाकरे रविंद्र- प्रथम दशक के हिंदी साहित्य में स्त्री एवं दलित विमर्श, (2014) चिंतन प्रकाशन कानपुर, पृष्ठ संख्या 3 (भूमिका से)

38. के.पी. प्रमिला- स्त्री अध्ययन की बुनियाद, (2015) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 15- 16

39. केपी प्रमिला- स्त्री अध्ययन की बुनियाद, (2015) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 22

40. खेतान प्रभा- स्त्री उपेक्षिता (1998) हिंदी पॉकेट बुक्स, पृष्ठ संख्या 21

41. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारतीय ज्ञानपीठ पृष्ठ संख्या 18

42. डॉक्टर रैना शिवमकृष्ण- कश्मीरी कवयित्रियां एवं उनका रचना संसार (भूमिका से)

43. ऋग्वेद (10,30,40), (1,11,8,8), (1,112,10), (5,6,6,9) तथा डॉ द्विवेदी रमेश प्रसाद- महिला सशक्तिकरण चिंतन एवं सरोकार, शांति भवन प्रकाशन रोहतक, पृष्ठ संख्या 41

44. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास (2011) भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृष्ठ संख्या 68

45. द्विवेदी रमेश प्रसाद- महिला सशक्तिकरण चिंतन एवं सरोकार, शांति भवन प्रकाशन रोहतक, पृष्ठ संख्या 54

46. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृष्ठ 91

47. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृष्ठ संख्या 99

48. चतुर्वेदी जगदीश्वर- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, (2000) अनामिका पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या 275

49. यादव राजेंद्र- हंस (पत्रिका) (बहस तलब लेख दिनेश राम), सितंबर (2013) नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 76

50. यादव राजेंद्र- हंस (पत्रिका) (बहस तलब लेख दिनेश राम) सितंबर (2013) नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 78

51. दिनकर रामधारी सिंह- संस्कृति के चार अध्याय, (1956) उदयाचल आर्य कुमार रोड पटना (जनवादी प्रिंटर्स) वाराणसी, पृष्ठ संख्या 320

52. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 183

53. अनामिका- स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, (2012) वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 223- 224

54. राजे सुमन- हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास (2011) भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, पृष्ठ संख्या 193

55. चतुर्वेदी जगदीश्वर- स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, (2000) अनामिका पब्लिशर्स, पृष्ठ संख्या 32-33

56. पाण्डे मृणाल- ध्वनियों के आलोक में स्त्री, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 57

57. पाण्डे मृणाल- ध्वनियों के आलोक में स्त्री, (2015) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 54-55

58. संपादक धर्मवीर- सीमंतनी उपदेश, पृष्ठ संख्या 86

59. वर्मा महादेवी- श्रृंखला की कड़ियां, (2008) लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, (भूमिका से)

60. राजे सुमन- हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, (2011) भारती ज्ञानपीठ नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 307

61. पाण्डे मृणाल- परिधि पर स्त्री (2017) राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 105

62. के.पी प्रमिला- स्त्री अध्ययन की बुनियाद, (2015) राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 29-30

63. पाण्डे मृणाल- परिधि पर स्त्री (2017) राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 9

64. गुप्ता रमणिका- स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, (2014), सामयिक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 66

65. गुप्ता रमणिका- स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, (2014) सामयिक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 94

66. गुप्ता रमणिका- स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास, (2014) सामयिक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 75

67. पटेल के. अनिला- नारी विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य, (2017) विष्णु ग्राफिक्स नौबस्ता कानपुर, पृष्ठ संख्या 55

68. डॉक्टर सियाराम- स्त्री विमर्श के विविध संदर्भ, पृष्ठ संख्या 201

69. पुष्पा मैत्रेयी-अगनपाखी 'उपन्यास' (2003) वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 329

70. पटेल के अनिला- नारी विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य, (2017) विष्णु ग्राफिक्स नौबस्ता कानपुर, पृष्ठ संख्या 58

71. पाण्डे मृणाल - मौजूदा हालात को देखते हुए (नाटक) राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 45